प्रथम अध्याय

शोध परिचय

1. शोध शीर्षक– उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यासों में चित्रित नारी संवेदना

2. शोध का प्रयोजन

यह शोधप्रबन्ध त्रिभुवन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम अनुसार मानविकी तथा सामाजिक शास्त्र संकाय अन्तर्गत हिन्दी विषय में स्नातकोत्तर उपाधि की आंशिक आवश्यकता की परिपूर्ति करने के लिए प्रस्तुत किया गया है ।

3. विषय प्रवेश

हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम सन् 1916 से 1936 तक का समय प्रेमचन्द-युग के नाम से प्रसिद्ध है । पूर्व प्रेमचन्द-युग में कुछ ही उपन्यासकार ऐसे थे, जिन्हें हम साहित्यिक उपन्यासकार कह सकते हैं । उन दिनों साहित्यिक उपन्यास लिखने का महत्व नहीं समझा जाता था । उपदेशात्मक एवं मनोरंजन प्रधान उपन्यासों की रचना करने में उस समय के लेखक मग्न थे । प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी जगत के लिए वरदान सिद्ध हुआ । उन्होंने हिन्दी उपन्यास का कायाकल्प किया, उसे मानव चरित्र का चित्र घोषित किया, उसके माध्यम से देश एवं समाज की समस्याओं का चित्रण ही नहीं किया, वरन् सामाधान भी खोजे । उनकी उपन्यास-कला का प्रभाव अनेक लेखकों ने ग्रहण किया । हिन्दी लेखकों ने ही नहीं, अपितु उर्दू, पंजाबी आदि अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों ने भी प्रेमचन्द साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की । इस प्रकार प्रेमचन्द उपन्यास साहित्य की परम्परा में युग–द्रष्टा का सम्मान पाने के अधिकारी बने, उनका रचना काल प्रेमचन्द-युग के नाम से अभिहित हुआ ।

प्रेमचन्द-युग प्रेमचन्द की औपन्यासिक कृतियों से ही समृद्ध नहीं हुआ है, वरन् अनेक अन्य उपन्यासकारों की कृतियों से भी महिमामय बना है । उनमें से कई लेखकों ने यदि प्रेमचन्द का अनुकरण किया है तो कई लेखकों ने प्रेमचन्द इत्तर दृष्टिकोण और उसी

के अनुरूप शिल्पविधि को भी अपनाया है, उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व की अवहेलना नहीं की जा सकती । उन्होंने हिन्दी उपन्यास के विकास में जो योगदान दिया है, उसका अपना महत्व है और रहेगा । इस युग में 60 से भी अधिक उपन्यासकारों ने सैकड़ों उपन्यासों की रचना की हैं । प्रेमचन्द और उनके समकालीन उपन्यासकारों ने भारतीय जीवन का समग्र चित्र अंकित किया । भारतीय समाज के प्रायः सभी वर्गों, ग्रामीण तथा नागरिक जीवन के यथार्थ पहलुओं, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याओं का कलात्मक निरुपण किया । इन्होंने आर्थिक शोषण, दहेज-प्रथा, विधवा-प्रथा, बहु-विधवा-प्रथा, अनमेल- विवाह-प्रथा, वेश्या-समस्या, छुआछूत की समस्या, ब्रिटिश नीति, राष्ट्रिय आंदोलन, साम्प्रदायिक संघर्षों आदि को लेकर अनेक उपन्यासों की रचना की । इस युग का उपन्यास साहित्य अपने युग की सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से विशेषतः प्रभावित हुआ है । उन्हें हम इस युग के उपन्यास साहित्य की प्रेरणा स्रोत कह सकते हैं ।

प्रेमचन्द-युग सामाजिक और राजनीतिक विषमताओं का युग था । देश पराधीनता की बेड़ियों से त्रस्त था । बुनियादी सामाजिक ढाँचा बुरी तरह चरमराया हुआ था । अंग्रेजी के अत्याचार, उनकी समाजवादी और सामन्तवादी व्यवस्था ने देश की जनता को बुरी तरह प्रताड़ित कर रहा था । चारों ओर अराजकता का वातावरण उत्पन्न कर देश को खण्डित करने का प्रयत्न किया जा रहा था । ऐसी विषय परिस्थितियों में हिन्दी साहित्य जगत में प्रेमचन्द का पदार्पण हुआ और उसके साथ ही साहित्य और समाज में क्रान्ति के युग का प्रारम्भ हुआ ।

प्रेमचन्द अपनी औपन्यासिक यात्रा के प्रारम्भिक दौर से ही मानवतावादी रहे । उनका मानवतावादी दृष्टिकोण जन-मानस के प्रति समर्पित हुआ है और इंसानी सरोकार की भूमिका निभाता है । उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण तिरस्कृत और उपेक्षितों के उन्नयन के साथ कर्मशील जिन्दगी का समर्थक है । प्रेमचन्द साहित्य की जमीन समसामयिक स्थितियों की गहराई में स्पर्श करती है । वह मानवहित को प्रश्रय देने वाली प्रत्येक विचारधारा को आधार बनाकर निर्मित है चाहे वह मार्क्सवाद हो या गांधीवाद । मानव जीवन के विभिन्न परिवेशों को प्रस्तुत करते हुए उनके बीच मानव की समस्याओं का विश्लेषण करने वाले प्रेमचन्द की मानवतावादी दृष्टि को विकसित करने में पूर्वी और पश्चिमी विचारकों और बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विचारधाराओं का बड़ा हाथ है । लेकिन वे

किसी भी विचारधारा के सैद्धान्तिक प्रवक्ता के रूप में प्रकट नहीं हुए । मानवतावादी चेतना से दीप्त होने के कारण उनकी प्रगतिशील दृष्टि यथार्थवाद को निर्विकल्प रूप में स्वीकार करती है, सोद्देश्यता तथा सामाजिक उपदेयता को महत्व देने वाली हर विचारधारा को अपने वृत में समाविष्ट कर लेती है ।

प्रेमचन्द का समाज से गहरा सम्बन्ध है । उन्होंने समाज और व्यक्ति दोनों की दयनीय स्थिति को सुदृढ़ करने समाज में फैले वैमनस्य, कुरीतियों, ईर्ष्या को समाप्त करने का प्रयास अपने साहित्य के माध्यम से किया । उन्होंने अपने साहित्य से सभी वर्गों को समानता का दर्जा दिया । उनके साहित्य के चरित्र थोथी कल्पनाओं से न बनकर वर्तमान की यथार्थ परिस्थिति से निर्मित उनका व्यापक दूर दृष्टिकोण भविष्य के निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ । उनके राजनीतिक, सामाजिक विचार अब भी काल की सीमा से परे होकर तर्क संगत बने हुए हैं । इसी दृष्टिकोण के कारण उन्होंने समाज की नाटकीय व्यवस्था, दमन, शोषण, उत्पीड़न, वैमनस्य, वर्गभेद का यथार्थ चित्रण कर सहानुभूतिपूर्ण संवेदनशील समाधान खोजने का प्रयास किया । इसी कराण जनमानस उनकी ओर आकृष्ट हुआ और हिन्दी कथा साहित्य कल्पनाओं की ऊँची उड़ानों से निकलकर यथार्थपूर्ण एवं समाज सापेक्ष बना ।

यह निर्विवाद है कि प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को नया जीवन दिया । पूर्व प्रेमचन्द-युग के उपन्यासकारों ने चरित्र-चित्रण, मानव-जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों मानसिक विश्लेषण तथा अन्तर्द्वन्द्व के ऊहापोह भरे चित्रों के दिग्दर्शन का प्रयास नहीं किया था । इनकी औपन्यासिक कृतियों में शील वैचित्र्य की उद्‌भावना और अन्तर्भावों की विशद् व्याख्या भी नहीं के बराबर थी । इसीलिए प्रेमचन्द ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने उपन्यास क्षेत्र में युग-प्रवर्त्तक का कार्य किया । इन्होंने तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों की पृष्ठभूमि पर व्यापक और विस्तृत उपन्यास-साहित्य का सृजन किया । विषय-वस्तु के आधार पर प्रेमचन्द के उपन्यासों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- सामाजिक और राजनीतिक उपन्यास । इनके सामाजिक उपन्यास हैं- *वरदान, प्रतिज्ञा, सेवासदन, निर्मला, कायाकल्प और गबन* । राजनीतिक उपन्यासों के नाम हैं- *प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अधूरा)* । कायाकल्प और गबन यद्यपि सामाजिक उपन्यास है, तथापि इनमें राजनीतिक तत्वों का भी पर्याप्त समावेश हो गया है ।

प्रेमचन्द मनुष्य के उन सामाजिक आदर्शों को महत्व देते हैं, जिनमें अंततः मानवता के उच्च मूल्य प्रस्फुटित होते हैं । इन मूल्यों की प्राप्ति के मार्ग में मनुष्य की व्यक्तिगत चेतना बाधा-रूप बनकर अड़ जाती है और फलतः संघर्ष अटल हो जाता है – व्यक्ति समष्टि का संघर्ष, अस्वाभाविक स्वाभाविक का संघर्ष । प्रेमचन्द के अनुसार संघर्ष का अन्त व्यक्ति सत्ता पर सामाजिक सत्ता की विजय में होता है, मनुष्य पर देवत्व की विजय में होता है । साहित्य और समाज का इस तरह सम्बन्ध जुड़ जाने के कारण प्रेमचन्द की साहित्यिक संवेदना में बहिर्मुखी जीवन का एक नया दृष्टिकोण प्रकट होता है । यही कारण है कि प्रेमचन्द के कथात्मक साहित्य का रूप अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा भिन्न है ।

समाज जीवन के प्रत्यक्ष यथार्थ को चित्रित करने के लिए प्रेमचन्द की दृष्टि समाज के हर पहलू पर केन्द्रित हुई है । इसीलिए प्रेमचन्द के उपन्यासों का फलक विराट् है । उनके उपन्यासों में केवल जवान स्त्री-पुरुष ही नहीं बल्कि बच्चे और बूढ़े, अमीर और गरीब, गंवार और बुद्धिमान, किसान और साहुकार सब प्रकार के एवं समाज के हर पहलू का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग हैं । प्रेमचन्द ने जिस सामाजिक परिवेश को अपनी अनूभूति का क्षेत्र बनाया, वह परिवेश जीवन की भली-बुरी रुढ़ियों से भरा हुआ है । ये रुढ़ियाँ कहीं धर्म का आसरा लेकर कर्मकांड का रूप प्राप्त कर गयी है, तो कहीं कृत्रिम प्रतिष्ठा का सहारा लेकर सर्वसाधारण जनजीवन को निचोड़े जा रही है । प्रेमचन्द के उपन्यास इन तथाकथित झूठें आदर्शों का पुनर्स्थापना करना चाहते हैं । प्रेमचन्द की दृष्टि में सामाजिक आदर्श वे हैं जहाँ मानवता के शाश्वत मूल्यों की पहचान होती है । इसीलिए उनके उपन्यास विषयों की विविधता रखते हुए भी अपने मूल स्तर को सुरक्षित रख पायें हैं । संक्षेप में, प्रेमचन्द के उपन्यासों का स्वर मनुष्यता की सही स्थापना का है और इस स्थापना के लिए पारंपरिक बन्धनों से मुक्ति पाने की छटपटाहट का है ।

4. समस्या का कथन

प्रेमचन्द उर्दू का संस्कार लेकर हिन्दी में आए थे और हिन्दी के महान लेखक बने । हिन्दी को अपना खास मुहावरा और खुलापन दिया । उन्होंने साहित्य में सामयिकता प्रबल आग्रह स्थापित किया । आम आदमी को उन्होंने अपनी रचनाओं का विषय बनाया और उसकी समस्याओं पर खुलकर कलम चलाते हुए उन्हें साहित्य के नायकों के पद पर

आसीन किया । प्रेमचन्द से पहले हिन्दी साहित्य राजा–रानी के किस्सों, रहस्य-रोमांच में उल्झा हुआ था । प्रेमचन्द ने साहित्य को पन्ने पर उतारा । वे सांप्रदायिकता, भष्टाचार, जमींदारी, कर्जखोरी, गरीबी, उपनिवेशवाद पर आजीवन लिखते रहे । प्रेमचन्द की ज्यादातर रचनाएं उनकी ही गरीबी और दयनियता की कहानी कहती हैं । उनकी रचनाओं में वे नायक सिद्ध हुए, जिसे भारतीय समाज अछूत और घृणित समझता था । उन्होंने सरल और आम बोल चाल की भाषा का उपयोग कर और अपने प्रगतिशील विचारों को दृढ़ता से तर्क देते हुए समाज के सामने प्रस्तुत किया ।

प्रेमचन्द एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को देखा और उनको कहानी के माध्यम से पहली बार लोगों के समक्ष रखा । उन्होंने उस समय के समाज की जो भी समस्याएं थी उन सभी को चित्रित करने की शुरुआत कर दी थी । उसमें दलित भी आते हैं , नारी भी आती हैं । ये सभी विषय आगे चलकर हिन्दी साहित्य के बड़े विमर्श बनें ।

प्रथमत: उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप से जोड़ने का काम किया, चारों और फैले हुए जीवन और अनेक सामयिक समस्याओं ने उन्हें उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया । प्रेमचन्द ने अपने पात्रों का चुनाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से किया है, किन्तु उनकी दृष्टि समाज के उपेक्षित वर्ग की ओर अधिक रहा है । प्रेमचन्द जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनाया है । उनके पात्र प्राय: एक वर्ग के प्रतिनिधि रूप में सामने आते हैं । घटनाओं के विकास के साथ–साथ उनकी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का भी विकास होता रहा है । उनके कथोपकथन मनोवैज्ञानिक होते है । प्रेमचन्द जी एक सच्चे समाज सुधारक और क्रांतिकारी लेखक थे । उन्होंने अपनी कृतियों में स्थान–स्थान पर दहेज, अनमेल विवाह आदि का सबल विरोध किया है । नारी के प्रति उनके मन में स्वाभाविक श्रद्धा थी । समाज में उपेक्षित, अपमानिता और पतिता स्त्रियों के प्रति उनका हृदय सहानुभूति से परिपूर्ण रहा है । समाज और व्यक्ति के इस द्वन्द्व में प्रेमचन्द समाज को ही विजयी रख कर यथार्थ परिस्थिति का चित्रण करते हैं ।

प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज में दलित एवं नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । उसका एक मात्र कारण था प्राचीन वर्ग व्यवस्था तथा लोगों की संकुचित एवं स्वार्थी

मनोवृत्ति । प्रेमचन्द अपनी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से एकदम चीढ़ चुके थे । वे औरत को पति की खुसामत करती हुई घर की चार दीवारी में कैद तथा केवल बच्चे पैदा करने की मशीन के रूप में देखना पसंद नहीं करते । वे उसे मुक्त एवं आत्मनिर्भर देखना चाहते थे । अतः उनकी सभी संवेदना उन्हीं के पक्ष में अधिक रही है ।

प्रेमचन्द के साहित्य का आज गहन अध्ययन किया जाए तो उसकी प्रासंगिकता समकालिक परिस्थितियों में भी अति उपयोगी है । प्रेमचन्द के समय मे नारी अत्यन्त पीड़ित थीं । सच कहें तो वह हर क्षेत्र में तिरस्कृत और परनिर्भर थी । प्रेमचन्द के उपन्यासों का अध्ययन करके मैंने पाया कि बहुत सी भूतकालिक समस्याओं का स्वरुप आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है । इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर मैंने अपने लघुशोध शीर्षक का चयन किया है ।

5. शोध कार्य का औचित्य

प्रेमचन्द ने अपनी कला के शिखर पर पहुँचने के लिए अनेक प्रयोग किए । जिस युग में प्रेमचन्द ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और प्रगतिशील का कोई मॉडल ही उनके सामने था सिवाय बाँग्ला साहित्य के । उस समय बंकिम बाबू थे, शरतचंद्र थे और इसके अलावा टॉलस्टॉय जैसे रुसी साहित्यकार थे । लेकिन उन्होंने 'गोदान' जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है । उन्होंने चीजों को खुद गढ़ा और खुद आकार दिया । जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था तब उन्होंने कथा साहित्य द्वारा हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में जो अभिव्यक्ति दी, उसने सियासी, सरगर्मी की जोश को और आंदोलन को उभारा और उसे ताकतवर बनाया और इससे उनका लेखन भी ताकतवर होता गया । प्रेमचन्द इस अर्थ में निश्चित रूप से हिन्दी के पहले प्रगतिशील लेखक कहे जा सकते हैं । प्रेमचन्द ने हिन्दी में कहानी की एक परंपरा को जन्म दिया और एक पूरी पीढ़ी उनके कदमों पर आगे बढ़ी । 50-60 के दशक में रेणु, नागार्जुन और इनके बाद श्रीनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं , वो एक तरह से प्रेमचन्द की परंपरा के तारतम्य में आती हैं । प्रेमचन्द एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को देखा और उनको कहानी के माध्यम

से पहली बार लोगों के समक्ष रखा । उन्होंने उस समय के समाज की जो भी समस्याएं थी उन सभी को चित्रित करने की शुरुआत कर दी थी ।

प्रेमचन्द ने नारी जीवन के प्रत्येक पहलुओं को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है तथा नारी जीवन से सम्बन्धित विविध प्रकार की समस्याओं को प्रस्तुत करके नारी को सचेत करने की चेष्टा भी की है । उन्होंने नारी की बाल्य, युवा, प्रौढ़ तथा वृद्ध आदि सभी अवस्थाओं एवं बहन, बेटी, पत्नी, माँ, सास, ननद आदि विविध रूपों को बखूवी अपने उपन्यासों में चित्रित किया है । साथ ही सदियों से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक धरातल पर शोषण का शिकार होती आ रही नारी किस प्रकार ऐसी विरोधी परिस्थितियों का सामना करते हुए भी अपने उत्तरदायित्व को निभाते हुए उदात्त व्यक्तित्व की स्थापना करती है, उसका मार्मिक चित्रण भी प्रेमचन्द ने किया है । उनकी दृष्टि में नारी त्याग एवं बलिदान की मूर्ति है ।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में नारी के शाश्वत रूप को चित्रित किया है । वे नारी को महज एक वासना की कठपुतली या वासनापूर्ति का साधन मात्र न मानकर उसके चरित्र की महानता के दर्शन भी करते हैं । इसीलिए उन्होंने समाज में पीड़ित प्रताड़ित नारी को न केवल सामाजिक धरातल पर बल्कि राजनैतिक धरातल पर भी समान अधिकार दिलाने की कोशिश की है । प्रेमचन्द की नारी विषयक धारणा अपने पूर्वर्ती लेखकों की नारी विषयक धाराणाओं से सर्वधा भिन्न थी । उनकी दृष्टि में नारी सम्मान की अधिकारी है । वह किसी भी परिस्थिति में किसी भी रूप में धिक्कार या दंड की यात्रा नहीं हो सकती क्योंकि वह स्वयं क्षमा और सहनशीलता की साक्षात देवी है । इसीलिए प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों के प्रति विशेष सहानुभूति दर्शायी है ।

मुख्यत: हिंदी उपन्यास साहित्य में नारी संवेदनाओं का गूंजन प्रेमचन्द के उपन्यासों से ही प्रारम्भ हुआ है । फिर उछ्लती, कुदती तीव्र गति से यह गूंजन निरंतर आज तक चलता आया है । लेकिन हिन्दी उपन्यासों में उसके सर्वांगिण और पुष्ट स्वरुप का आकलन अप्राप्य है । खासकर प्रेमचन्द के चार प्रमुख उपन्यासों (सेवासदन, निर्मला, वरदान व गोदान) में नारी सम्वेदनाओं का समष्टि रूप में आकलन और मूल्यांकन करना है । समाज में नारी के उत्थान का सवाल, जो युगों से गौण हो रहा है इस अनुसन्धान से उपन्यास

साहित्य में आकार ग्रहण करेगा । प्रेमचन्द कृत उपन्यास साहित्य में यह एक नवीन उपलब्धि की खोज होगी ।

6. शोध का उद्देश्य

1. प्रेमचन्द की चार प्रमुख औपन्यासिक कृतियों (सेवासदन, निर्मला, वरदान व गोदान) में चित्रित नारी संवेदनाओं का सांगोपांग अध्ययन तथा समीक्षा करना ।
2. वर्तमान सन्दर्भ में प्रेमचन्द साहित्य की प्रासंगिकता का विवेचन ।
3. जन-मानस में चेतना और जागरण को बल पहुँचाना ।

7. पूर्व कार्य की समीक्षा

प्रेमचन्द चर्चित उपन्यासकार होने के कारण नारी संवेदनाओं पर बहुत सारे अनुसन्धानकर्ताओं नें अवश्य ही अनुसंधान किया होगा । नारी संवेदनाएं से सम्बंधित कुछ उपलब्ध सामग्रियों को मैंने यहाँ प्रस्तुत किया है ।

- शोध शीर्षक– प्रेमचन्द के कथा साहित्य में चित्रित गांव
  शोधार्थी– श्री हिंदूराव रामचन्द्र
  शिबाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र, 2009

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में भारतीय गांव की विशेषता, सामाजिक और आर्थिक समस्याएं आदि को चित्रित किया गया है । द्वितीय अध्याय में उच्च वर्ग के पात्र, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग के पात्रों का चित्रण किया गया है । तृतीय अध्याय में शिक्षा के आधार पर, चेतना के आधार पर, शोषण के आधार पर, व्यवसाय से संबध्ति पात्र और वर्ण के आधार पर पात्रों के परिप्रेक्ष्य में चित्रण किया गया है । चतुर्थ में प्रेमचन्द के उपन्यासों में विभिन्न निम्न वर्गीय समाज की जातियों में दलित चेतना को चित्रित किया गया है । पंचम अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों में विभिन्न वर्गों की स्त्रियों में चेतना का वर्णन किया गया है ।

- शोध शीर्षक– प्रेमचन्द के उपन्यासों में यथार्थवाद का पुनर्मूल्यांकन
  शोधार्थी– रिता कोरियोकोस

महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, 1995

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध की अध्ययन योजना निम्नानुसार है– शोधप्रबन्ध के प्रथम अध्याय में यथार्थवादी दृष्टि के उद्‌भव और विकास का विस्तृत विवेचन किया गया है । द्वितीय अध्याय में सभ्यता के प्रत्येक युग में अपनी स्थिति की सूचना देने वाली यथार्थवादी दृष्टि की रचनात्मकता का अध्ययन किया गया है । तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द की सृजनात्मक प्रतिभा का विशेष विवेचन उनकी रचनाओं के मूल में निहीत संवेदनागत वैविध्य के आधार पर हुआ है । चतुर्थ अध्याय में प्रेमचन्द की यथार्थवादी दृष्टि आकलन उनके उपन्यासों में उपजीव्य, पात्र गठन और समस्याओं के प्रति स्वीकृत यथार्थोन्मुखता का स्वभाव निर्णीत करके किया गया है । पंचम अध्याय में प्रेमचन्द के यथार्थवाद के प्रेरक तत्वों का अनुशीलन करके यह स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक संवेदना से संयुक्त प्रेमचन्द व्यापक धरातल पर मानव मंगल के लिए विकसित हर मानवतावदी विचारधारा से प्रेरित एवं प्रभावित है । साथ ही यह भी व्यक्त किया गया है कि उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त यथार्थ पश्चिमी विचारधाराओं की प्रेरणागत उपज न होकर उनकी मानवतावादी दृष्टि से उद्‌भूत है ।

J शोध शीर्षक– प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में परिवार की अवधारणा
शोधार्थी– निजाम उद्‌दीन खान
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तरप्रदेश, 2012

प्रथम अध्याय में परिवार की उत्पत्ति तथा उसके महत्व का उल्लेख किया गया है । द्वितीय अध्याय में प्रेमचन्द पूर्व युग के मुख्य उपन्यासों का परिचय दिया गया है और फिर इन उपन्यासों में परिवार की अवधारणा को विश्लेषण किया गया है । तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द युगीन सामाजिक, राजनीतिक एवं राजनीतिक स्थिति का उल्लेख करते हुए उनके वैचारिक रूप को उद्‌घाटित किया गया है । चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्द के मुख्य उपन्यासों का परिचय देते हुए उपन्यास के तत्वों के आधार पर उनकी आलोचना भी की गई है । पंचम अध्याय में प्रेमचन्द के उपन्यासों में परिवार के प्रति तथा संयुक्त परिवार के प्रति निष्ठा पर गहरी दृष्टि डाली गयी है ।

J शोध शीर्षक– प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी संवेदना: एक अध्ययन
अनुसंधानकर्ता– झाला योगेशभाई प्रतापसिंह

सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, 2011

प्रथम अध्याय में प्रेमचन्द के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा साहित्यिक संघर्षों का जिक्र किया गया है । द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत उपन्यास की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उपन्यास के अर्थ एवं परिभाषा को प्रस्तुत किया गया है । तृतीय अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्द पूर्व युग से लेकर प्रेमचन्दोत्तर युग तक के कुछ प्रमुख नारी केन्द्रित उपन्यासों के परिचयात्मक अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है । चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यासों में नारी संवेदना पर विशद् रूप से प्रकाश डाला गया है । पंचम अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्द के उन प्रमुख उपन्यासों को केंद्र में रखा गया है जिसमें नारी से जुड़ी संवेदना तथा उनकी विविध समस्याओं के प्रमुख रूप से अभिव्यक्ति मिली है ।

J शोध शीर्षक–प्रेमचन्द के साहित्य की सर्वकालिक युग प्रासंगिकता का विवेचनात्मक अध्ययन
शोधार्थी–श्रीमती सावित्री
श्री जगदिशप्रसाद झावरमल टिबरेबाल विश्वविद्यालय, विद्यानगरी, राजस्थान, 2012

प्रस्तुत शोध को पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में अध्ययन की पृष्ठभूमि, द्वितीय अध्याय में सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन, तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख विचारधारा– यथार्थवाद एवं गांधीवाद, चतुर्थ अध्याय में हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द का योगदान एवं पंचम अध्याय में प्रेमचन्द के साहित्य से अभिप्रेरणा, शिक्षा एवं मानव मूल्यों के उत्थान में योगदान दिया गया है ।

J शोध शीर्षक– प्रेमचन्द के उपन्यासों का समाज-शास्त्रीय अध्ययन
शोधार्थी– राज कुमारी गुगलानी
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, 1980

इस शोधप्रबन्ध के 11 अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय की निजी मौलिकता है । पहला अध्याय शोधप्रबन्ध की भूमिका प्रस्तुत करता है । इसमें समाज-शास्त्र की व्याख्या प्रस्तुत करके कहा गया है कि वस्तुत: समाज-शास्त्र अंग्रेजी शब्द का पर्याय है जिसका अर्थ है–

समाज का वैज्ञानिक अध्ययन । दूसरे अध्याय में प्रेमचन्द युगीन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है । इसके अन्तर्गत तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख हुआ है । तीसरे अध्याय में प्रेमचन्द की कृतियों का अध्ययन किया गया है । चतुर्थ अध्याय में उपन्यासों में चित्रित आर्थिक समस्याओं को उठाया गया है । पंचम अध्याय में प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित यौन समस्यओं तथा नैतिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है । छठा अध्याय धार्मिक एवं साम्प्रदायिक समस्याओं जैसे शिक्षा, पुलिस, प्रशासन, राजनीति, साहित्य एवं संस्कृति को लिया गया है । आठवें अध्याय में नारी चित्रण पर प्रकाश डाला गया है । नवां अध्याय पुरुष पात्रों के जीवन से सम्बद्ध है । इन पुरुष पात्रों को कई रूपों में चित्रित किया गया है । दसवां अध्याय मानवीय तथा सामाजिक मूल्यों को उद्घाटित करता है । ग्यारहवें अध्याय में उपसंहार दिया गया है ।

8. शोध अध्ययन का सीमांकन

किसी भी शोध समस्या का औचित्यपूर्ण एवं सार्थक निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए शोध को परिसीमित करना अनिवार्य हो जाता है । मैंने अपने लघुशोध को निम्नांकित विन्दुओं में परिसीमित किया है–

1. प्रस्तुत लघुशोध के अध्ययन में प्रेमचन्द द्वारा रचित चार प्रमुख उपन्यासों (सेवासदन, निर्मला, वरदान व गोदान) को लिया गया है ।
2. प्रस्तुत लघुशोध में प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य पर प्रेमचन्द पूर्व, प्रेमचन्द युगीन एवं प्रेमचन्दोत्तर साहित्यकारों के विचारों के सन्दर्भ में देखा गया है ।
3. प्रस्तुत लघुशोध के उद्देश्यों को आधार मानकर अध्ययन किया गया है ।

9.शोध प्रविधि

इस अनुसन्धान में समाज शास्त्रीय एवं वर्णानात्मक प्रविधि का प्रयोग किया जाएगा अर्थात् निम्न अध्ययन सामग्रियाँ सहायक होंगी–

1. प्रेमचन्द की चार प्रमुख औपन्यासिक कृति (सेवासदन , निर्मला , वरदान व गोदान)
2. टीकाएं, जर्नल, आलेख, पत्रपत्रिकाएं आदि ।

10. शोधप्रबन्ध की प्रारंभिक रूपरेखा

अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत लघुशोध को निम्न लिखित पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

- **प्राक्कथन**
- **प्रथम अध्याय**

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत शोध परिचय रखा गया है । शोध का प्रयोजन, विषय प्रवेश, समस्या का कथन, शोध अध्ययन का औचित्य, शोध अध्ययन का सीमांकन, शोध का उद्देश्य, पूर्व कार्य की समीक्षा, शोध प्रविधि व शोधप्रबन्ध की प्रारंभिक रूपरेखा जैसे शीर्षकों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

- **द्वितीय अध्याय**

प्रत्येक साहित्यकार अपने आसपास के समाज से बहुत कुछ ग्रहण करता है और उसे अपनी संवेदनाओं के साथ जोड़कर साहित्य का सृजन करता है । अतः किसी भी साहित्य का अध्ययन करना है तो सर्वप्रथम यह जानना अति आवश्यक हो जाता है कि उसका लेखक किस परिवेश से जुड़ा हुआ है । इसलिए प्रस्तुत लघुशोध के द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्द के जन्म से लेकर उनके बचपन, उनके घर–परिवार एवं उनके स्वभाव की विशेषताओं, उनकी शिक्षा, व्यवसाय, विवाह, जीवन संघर्ष, रचना कर्म आदि से जुड़ी तमाम बातों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

- **तृतीय अध्याय**

हिन्दी उपन्यास साहित्य अपनी विकास यात्रा में परिवर्तन के अनेक आयामों से गुजर चुका है । उनमें व्यक्त नारी जीवन का चित्रण भी काफी संघर्षपूर्ण रहा है । हिन्दी उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत नारी जीवन में आए उतार-चढ़ाव को प्रस्तुत करने तथा उसके संघर्षमय जीवन की यात्रा को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही अपने लघुशोध के तृतीय अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्द-पूर्व युग से लेकर प्रेमचन्दोत्तर युग के कुछ प्रमुख नारी केंद्रित उपन्यासों के परिचयात्मक अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है ।

) चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्द के उन प्रमुख उपन्यासों (सेवासदन, निर्मला, वरदान, गोदान) को केन्द्र में रखा गया है, जिसमें नारी से जुड़ी संवेदना तथा उनकी विविध समस्याओं को प्रमुख रूप से अभिव्यक्ति मिली है । इस अध्याय के माध्यम से प्रेमचन्द युगीन नारी के सच्चे चित्र को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । साथ ही उसमें प्रेमचन्द की नारी भावना को उजागर करने का विशेष रूप से प्रयास रहा है, जिसके तहत उन्होंने नारियों के दुःख-दर्द, उनकी पीड़ा, उनकी कुण्ठाग्रस्त स्थिति आदि का चित्रण किया गया है ।

) पंचम अध्याय

पंचम अध्याय के अन्तर्गत समग्र लघुशोध के निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है तथा सबसे अंत में परिशिष्ट के रूप में आधार ग्रन्थ व संदर्भ-ग्रन्थ-सूची को प्रस्तुत किया गया है ।

द्वितीय अध्याय

प्रेमचन्द का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. जन्म

हिन्दी उपन्यास साहित्य के युगांतरकारी लेखक प्रेमचन्द का जन्म बनारस से करीब चार मील की दूरी पर स्थित 'लमही' नामक गांव में कृष्णपक्ष की दशमी को संवत् 1937 अर्थात् 31 जुलाई, सन् 1880, शनिवार को श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में हुआ था।

प्रेमचन्द का जन्म-पत्री का नाम 'धनपत राय' चाचा ताऊ का मुँहबोला नाम 'नवाब राय' था और इसी नाम से प्रेमचन्द ने अपने लेखकीय जीवन का श्रीगणेश किया तथा मित्रों द्वारा दिया हुआ नाम 'बम्बुक' था (गोपाल : 1997 : 36)। प्रेमचन्द के बारे में अमृतलाल नागर लिखते हैं, "मेरा खयाल है, घर में इनका प्यार का नाम भी नवाब ही रहा होगा। प्रेमचन्द ने अपने पिता के एक संवाद का जिक्र किया है, जिसमें वे नवाब कहकर पुकारे जाते हैं (पांडेय : 1998 : 13)।"

ज्यादातर विद्वान प्रेमचन्द की जन्म–तिथि 31 जुलाई, सन् 1880 ही मानते हैं, परंतु डॉ.कमलकिशोर गोयनका ने अपनी एक पुस्तक 'प्रेमचन्द अध्ययन की नयी दिशाएँ' में प्रेमचन्द के जन्म सम्बन्धी कुछ तथ्यों पर शंका व्यक्त करते हुए लिखा है –"प्रेमचन्द पर शोध कार्य करते हुए मुझे दो ऐसे प्रमाण मिले, जिन्होंने प्रचलित जन्म-तिथि पर एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया है (गोयनका : 2002 : 9)।"

अपने इस विचार की पुष्टि के लिए उन्होंने प्रेमचन्द की एन्ट्रेन्स परीक्षा का प्रमाणपत्र तथा उनकी सर्विस बुक का सहारा लिया है। वे लिखते है– "उनका एन्ट्रेन्स सर्टिफिकेट धनपत राय के नाम से हैं और इस पर यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, एन्ट्रेन्स एक्जामिनेशन 1899 मुद्रित है। इस सर्टिफिकेट पर अंकित है कि धनपत राय ने जनवरी 1899 में हुई एन्ट्रेन्स परीक्षा 17 वर्ष 4 मास की आयु में पास की। यदि मान लिया जाय कि विश्वविद्यालय ने 20 फरवरी, 1899 को सर्टिफिकेट देते समय उनकी आयु की गणना करके उनकी आयु १७ वर्ष ४ मास मानी थी, तब उनकी जन्म–तिथि 20 अक्तूबर, 1881

होनी चाहिए, परन्तु यह जन्म-तिथि कुंडली की जन्म-तिथि से मेल खाती (गोयनका : 2002 : 10) ।"

प्रेमचन्द के जन्म सम्बन्धी प्रमाण प्रस्तुत करते हुए वे लिखते है - "इसके साथ यह भी एक आश्चर्य की बात है कि प्रेमचन्द की सर्विस बुक में लिखित जन्म-तिथि न तो जन्म कुण्डली से मिलती है और न एन्ट्रेन्स सर्टिफिकेट से । सर्विस बुक में उनकी जन्म- तिथि दी है 10 अगस्त, 1881 । इस प्रकार प्रेमचन्द की जन्म-तिथि के रूप में तीन तिथियां सामने आती हैं । उनकी जन्म-कुण्डली वाली प्रचलित तिथि अन्य दो उपलब्ध प्रमाणों से अनुमोदित नहीं होती, अतः उनकी सत्यता के सम्बन्ध में सन्देह हो जाना स्वाभाविक ही है (गोयनका : 2002 : 10) ।"

2 माता-पिता एवं बचपन

प्रेमचन्द के पिता का नाम मुंशी अजायब राय था । वे डाकखाने में मुंशी का काम करते थे । प्रेमचन्द की माता का नाम आनंदी देवी था । उनकी तीन बहनें थीं । उनमें से दो तो बहुत पहले ही मर गई थी । तीसरी लड़की सुग्गी, जो जिन्दा थी, प्रेमचन्द उनसे सात–आठ बरस छोटे थे । तीन-लड़कियों के बाद पैदा होने के कारण वे 'तेतर' कहलाते थे और ऐसी संतानों के बारे में लोगों का विश्वास है कि तेतर बच्चा माँ या बाप में से किसी एक को जरुर खो देता है ।

प्रेमचन्द के पिता मुंशी अजायब राय गीता और दूसरे शास्त्रों का नियमित पाठ करते थे किन्तु धार्मिक अनुष्ठानों में उन्हें ज्यादा विश्वास न था । वे कहते थे– "उनमें ढोंग ज्यादा है, तत्व कम । धर्म का मतलब वह सदाचार समझते थे, जिसे उन्होंने शक्ति भर अपने जीवन में बरता (गोपाल : 1997 : 10) ।" माँ सुग्गी से ज्यादा प्रेमचन्द को प्यार करती थी । उसका सबसे बड़ा कारण यह था कि एक तो वे लड़के थे ऊपर से सबसे छोटे भी थे और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उनकी दो सन्तानें पहले ही मर चुकी थी । इसीलिए माँ को हरदम यही डर लगा रहता था कि कोई उसके बेटे को नजर लगा देगा, कुछ जादू-टोना कर देगा । हरदम झाड़-फूँक करवाती रहती; राई नोन (नमक) से नजर उतरवाती रहती और डिठौना (बच्चों के ललाट पर लगाया जाने वाला काजल का टीका

जो नवाब को 5–6 साल की उम्र तक लगाया जाता रहा । माँ का बस चलता तो वह कभी बेटे को अपने आँचल से अलग न होने देती (राय : 1997 : 10) ।

बचपन में वे गुल्ली डँडा बहुत खेलते थे । पतँग उडाने का उन्हें बहुत शौक था, मगर पैसे न होने के कारण डोर लुट-लुटकर ही जी बहला लिया करते थे । दूसरों के खेतों में घुसकर आम तोड़ लाना, ईख तोड़कर चुसना और मटर की फली तोड़कर खाने में उन्हें बहुत आनन्द मिलता था । प्रेमचन्द ने 'चोरी' कहानी में अपने बचपन के उन दिनों की याद करते हुए लिखा है -"हाय बचपन, तेरी याद नहीं भुलती ! वह कच्चा, टुटा घर, वह पुआल का बिछौना, वह नंगे बदन, नंगे पाँव खेतों में घुमना, आम के पेड़ों पर चढ़ना सारी बातें आँखो के सामने फिर रही हैं । चमरौंधे जूते पहनकर उस वक्त जितनी खुशी होती थी, अब फ्लेक्स के बूटों से नहीं होती, गरम पनुएं रस में जो मजा था, वह अब गुलाब के शर्बत में भी नहीं, चबेने और कच्चे बेरों में जो रस था वह अब अंगुर और खीर मोहन में भी नहीं मिलता (शिवरानी : 1993 : 20) ।"

इस तरह माँ और दादी के लाड़-प्यार में दिन बड़ी मस्ती में बीत रहे थे, लेकिन ईश्वर को कुछ और ही मंजुर था । सन् 1888 ई.में उनके बाल मानस पर भयंकर वज्राघात हुआ । अजायब राय की तरह आनंदी देवी भी संग्रहणी की पुरानी मरीज थी । एस बार का हमला जानलेवा साबित हुआ । छः महीने तक वे बीमार रही । उनकी अन्तिम दशा का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं – "जब माँ मरने लगी, तब मेरा, मेरी बहन का तथा बड़े भाई का हाथ मेरे पिता के हाथ में देकर बोली ये तीनों बच्चे तुम्हारे हैं (राय : 1997 : 12) ।"

माँ के मरने के बाद नवाब के पास वही पुरानी दुनिया थी, वही मौलवी साहब, वही खेत-मैदान, वही आम–इमली, वही भाग दौड़, वही गुल्ली डंडा; किन्तु फर्क सिर्फ इतना था कि अब उसे रोकने वाला कोई न था । माँ थी, तब तो उन्हें किसी काम के लिए रोकती–टोकती थी, कभी-कभी मारती भी थी; दादी तो बस उन्हें लाड़ करती थी; कुछ तो इसलिए कि बेटा माँ के मरने का गम भूल जाए । लेकिन प्रेमचन्द का मन अब किसी चीज में नहीं लगता था । बिना किसी रोक–टोक की वजह से धीरे-धीरे आवारागर्दी प्रेमचन्द की सबसे बड़ी आदत बन गई, साथ ही दूसरी बुरी लतें भी बढ़ने लगी । झूठ बोलना, चोरी करना, सिगरेट–बीड़ी पीना आदि । बिना माँ के बच्चे के साथ ऐसा ही होता है । उधर दो वर्षों के

बाद ही पिता ने दूसरा ब्याह कर लिया । नई माँ घर में आ गई, लेकिन नई माँ प्रेमचन्द की अपनी माँ का स्थान कभी न ले सकी । अब तो उन्हें दादी की गोद में ही चैन मिलता था, किन्तु कुछ दिनों बाद उनकी दादी का भी देहान्त हो गया ।

दूसरी माँ–विमाता के आ जाने से उनका अकेलापन और बढ़ गया । पिता को अपने बेटे के पास रहने का समय नहीं था । पैसे वह बेटे (प्रेमचन्द) को जरूर देते थे, किन्तु पैसा कभी प्यार का स्थान नहीं ले पाता और विमाता कभी उनकी अपनी माता नहीं बन पाई ।

3. शिक्षा

पाँचवें साल से ही प्रेमचन्द की शिक्षा का आरंभ हुआ । उनकी प्रारंमिक शिक्षा उर्दू–फारसी में हुई । लमही से सवा मील की दूरी पर एक गाँव है लालपुर वहीं एक मौलवी साहब रहते थे, जो पेशे से तो दर्जी थे, किन्तु मदरसा भी लगाते थे । प्रेमचन्द की प्रारंभिक शिक्षा वहीं पर हुई । सन् 1895 में हाईस्कूल में भर्ती होने के लिए वे बनारस आए । तब उन्होंने पिता से खुद ही कहा था कि खर्चा के लिए पाँच रुपयें दे दिए जाया करें । पर बनारस आकर पता चला कि खर्च ज्यादा हैं – दो रुपयें फीस के, एक रुपये का दूध, बाकी बचे दो रुपये, उसमें कैसे गुजर हो सकेगा ? तब सोचा कि प्राइवेट में पढ़ा जाए । दिनभर बनासर में रहकर पढ़ाई होती, रात को घर पर कुप्पी के सामने बैठकर टाट बिछाकर पढ़ते ।

सन् 1896 में उनके पिता की मृत्यु हो गई । स्कूल में तो प्रेमचन्द की फीस माफ हो गई थी, किन्तु मैट्रिक्युलेशन में सेंकड डिविजन आया । अव्वल दर्जे में आते तो फीस माफ हो सकती थी । सिफारीश से भी काम न बना । गणित में कमजोर न होते तो शायद काम बन भी जाता । वीज गणित और रेखा गणित से तो उनकी रूह काँप उठती थी । वे खुद कहते थे– "गणित मेरे लिए गौरी शंकर की चोटी थी, जिस पर मैं कभी न चढ़ सका (राय : 1997 : 23) ।" कॉलेज में भर्ती न हो सके, पर पढ़ने की इच्छा न मीटी । सन् 1910 में जब गणित ऐच्छिक विषय हो गया तब उन्होंने इन्टरमीडिएट पास किया । उसके बाद बी.ए की परीक्षा में भी सफल रहे ।

4 . व्यवसाय

अध्ययन–अध्यापन के प्रति ज्यादा रूचि होने के कारण प्रेमचन्द ने उसे अपने व्यवसाय का माध्यम बनाया । बनारस, कानपुर, गोरखपुर, बस्ती आदि कई जगहों पर उन्होनें अध्यापन कार्य किया । कई बार आर्थिक कठिनाइयों और जीवन निर्वाह के लिए ट्युशन भी करते थे ।

सन् 1905 में ट्रेनिंग कॉलेज से जुनियर सर्टिफिटेक टीचर (जी.सी.टी) की सनद लेकर निकले । इसी वर्ष कॉलेज के प्रिन्सिपल मिस्टर कैंपलस्टर के प्रिय शिष्य होने के कारण ट्रेनिंग कॉलेज के मॉडल स्कूल के हेड मास्टर नियुक्त हो गए । सन् 1908 में हमीरपुर जिले के अंतर्गत महोबा में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सब इन्सपेक्टर नियुक्त हो गए । उसके बाद सन् 1915 में सरकारी स्कूल बस्ती में असिस्टेंट टीचर बन गए । बाद में गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया (राय : 1997 : 24) ।

5. विवाह

प्रेमचन्द ने दो शादियाँ की थी । उनका प्रथम विवाह उनके नाना यानी मुंशी अजायब राय के नये ससुर ने अपने किसी मित्र के यहाँ बस्ती जिले की मेंहदावल तहसिल में रामपुर नामक गाँव में, वहाँ के जमींदार के यहाँ तय किया था । प्रेमचन्द अपनी शादी से बहुत खुश थे । मंडप छाने के लिए बाँस भी उन्होंने खुद काटा था । लेकिन शादी के बाद जब उन्होंने अपनी पत्नी की सुरत को पहली बार देखा तो जैसे उनका खुन ही सूख गया । प्रेमचन्द का अपनी इस पत्नी से जरा भी ताल-मेल नहीं था । (विमाता) चाची भी एकांत में उनकी शिकायतें ही किया करती थी । प्रेमचन्द अपनी प्रथम पत्नी के बारे खुद लिखते हैं, – “वह बदसूरत तो थी ही । इसके साथ–साथ जबान की भी मीठी न थी । यह इन्सान को और भी दूर कर देता है (राय : 1997 : 25) ।”

सन् 1905 में प्रेमचन्द की दूसरी शादी ‘शिवरानी’ नामक एक बाल विधवा से हुई । चाची को यह शादी पसंद नहीं थी । फिर भी प्रेमचन्द समाज के बंधनों को तोड़ना चाहते थे । चाची बड़े लडाकू स्वभाव की थी । इसी कारण प्रेमचन्द का अपनी दूसरी पत्नी से भी कई सालों तक ताल-मेल न हो सका । इस विषय में शिवरानी देवी खुद कहती है–

“मुझसे उनसे कोई आठ साल तक नहीं पटी । क्योंकि उनके घर में बमचख बहुत था । मैं बमचख की आदी न थी । वे चाहते थे कि मैं उनके लिए खुद स्थान तैयार करुँ । उनकी बीवी होने के नाते मैं घर की मालकिन बनकर बैंठू और मैं चाहती थी कि मैं क्यों यह झँझट बरदाश करुँ, मैं भी दुनिया को देखना चाहती थी क्योंकि मैं अपनी सास से सुन चुकी थी कि वे कैसा वर्ताब मेरी सोत से करती थीं (राय : 1997 : 33)।” इस प्रकार प्रेमचन्द की दूसरी शादी करने की वजह भी उनकी विमाता ही थी । यदि वह ठीक से रहती हो शायद वे अपनी पहली पत्नी के साथ भी अच्छे से गुजारा कर लेते ।

6. जीवन संघर्ष

संसार का महान से महान साहित्य उसके सृजनकर्ताओं के द्वारा झेले गए संघर्ष एवं कष्टों का ही परिणाम होता है । साहित्य रूपी पुष्प भी संघर्ष की भूमि पर ही खिलता है । प्रेमचन्द का समग्र साहित्य भी संघर्ष की एक अविरल यात्रा है । वे जिस रास्ते से गुजरते गए, वहाँ उन्हें मार्ग में कठिनाइयों एवं विपत्तियों का ही सामना करना पड़ा (शिवरानी : 1956 : 6)। उनके संघर्ष को निम्न स्तरों पर देखा जा सकता है –

6.1 पारिवारिक स्तर

प्रेमचन्द के जीवन में पारिवारिक संघर्ष मरते दम तक रहा । बचपन में ही माँ के मरने पर उन्हें मातृप्रेम से वंचित होना पड़ा । ऊपर से विमाता का व्यवहार भी उनके प्रति अच्छा नहीं था । कुछ ही साल बाद पिता की भी मृत्यु हो गई । अत: जो उम्र उनके खेलने–कूदने की थी उसी में उन्हें गृहस्थी का सारा बोझ ढोना पड़ा । पिता की मृत्यु, विमाता तथा पत्नी के वैमनस्य ने उन्हें घर से विरक्त–सा बना दिया था । नित्य के पारिवारिक कलह तथा नौकरी में निरंतर बदलियों के कारण वे अंतत: पेचिश के कायमी शिकार हो गए ।

6.2 आर्थिक स्तर

प्रेमचन्द के जीवन में आर्थिक संघर्ष हमेशा ही बना रहा । नवाब राय तथा धनपत राय के नाम से जानने वाले प्रेमचन्द अपने जीवन में कभी भी न तो नवाबी ठाठ ही देख

पाये न धन के अधिपति ही बन पाये । प्रेमचन्द जीवनभर निर्धनता की चक्की पिसते रहें । अपनी निर्धनता का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द खुद कहते हैं – "अंधेरा के पुल का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिनों तक पहना है । जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आने से ज्यादा का जूता कभी नहीं खरीदा और चार आने गज से ज्यादा का कपड़ा कभी नहीं खरीदा (शिवरानी : 1956 : 8)।"

इसी आर्थिक संघर्ष के कारण अपना जीवन निर्वाह करने के लिए तो एक बार उन्हें अपनी प्रिय पुस्तक को भी बेच देना पड़ा । इसका वर्णन करते हुए अमृतराय लिखते हैं – "जाडों के दिन थे । पास एक कौड़ी न थी । दो दिन एक-एक पैसे का चबेना खाकर काटे थे । मेरे महाजन ने उधार देने से इनकार कर दिया था या संकोचवश मैं उससे मांग न सका था । एक- बुक सेलर की दुकान पर एक किताब बेचने गया । चक्रवती गणित की कुंजी थी । दो साल हुए खरीदी थी । अब तक उसे बड़े जतन से रखे हुए था, पर आज चारों और से निराश होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया । किताब दो रुपये की थी, लेकिन एक पर सौदा ठीक हुआ (शिवरानी : 1956 : 12)।" "आर्थिक संघर्ष को दूर करने के लिए उन्हें नियमित रूप से 6–7 घंटे लिखना–पढ़ना पढ़ता था । इस अर्थ में वे सचमूच 'कलम के मजदूर' थे । 'हंस पत्रिका' के कारण वे आजीवन आर्थिक संकट से मुक्त न हो पाये । पर इस घाटे के सौदे ने बाद में उनके परिवार को खूब फायदा पहुँचाया । इससे प्रकाशित हुई पुस्तकों से (कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, गबन, कर्मभूमि, गोदान) उनके परिवार को पर्याप्त लाभ हुआ (शिवरानी : 1956 : 2)।"

7. स्वभाव की विशेषताएं

प्रेमचन्द एक सरल स्वभाव के व्यक्ति थे । वे मध्य वर्ग के बहुत साधारण व्यक्ति थे । उनकी आकांक्षाएं एवं खुशियां थोड़े में ही पूर्ण हो जाती । वे "simple living and high thinking" में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे । दूसरों के सामने मुखौटा लगाकर जाने में उनका विश्वास न था । उनके मन में जो आता, उसे दूसरों के सामने कहने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता था ।

नये उभरते साहित्यकारों को प्रेमचन्द अपने पत्रों द्वारा हमेशा प्रोत्साहित किया करते थे । हिन्दी के जैनेन्द्र, अज्ञेय, राधाकृष्ण, जनार्दन नागर, गंगाप्रसाद मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र,

उपेन्द्रनाथ 'अश्क', वीरेन्द्र कुमार जैन आदि अनेक लेखकों को प्रेमचन्द ने अपने हाथों से सँवारा था ।

8. रचना कर्म

प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन का शुभारंभ सन् 1901 से होता है और साहित्य की सेवा का यह कार्य उनके जीवन के अंतिम दिनों तक चलता रहा अर्थात् सन् 1936 तक बिमारी की अवस्था में भी वे बराबर लिखते रहते थे । इस दृष्टि से देखा जाए तो वे सचमूच ही 'कलम के मजदूर' थे । एक जगह वे स्वयं कहते हैं – "मैं मजदूर हूँ और मजदूर को काम किए बिना खाने का अधिकार नही हैं (शर्मा : 1985 : 190)।"

वैसे प्रेमचन्द ने गद्य की विविध विधाओं में अपनी कलम चलाई है, किन्तु कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में ही उन्हें सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुइ है । उन्होंने विचार प्रधान निबंध और कुछ प्रसिद्ध रचनाओं का अनुवाद भी किया है । इसके अलावा कुछ नाटक, जीवन चरित्रों और बाल उपयोगी साहित्य की रचना भी की है (शर्मा : 1985 : 192)। उनके साहित्य को हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं –

8.1 कहानी

कहानी साहित्य के भीतर देखा जाए तो प्रेमचन्द ने तीन सौ से भी ज्यादा कहानियाँ की रचना की है । उनकी ज्यादातर कहानियाँ मानसरोवर के आठ भागों में तथा गुप्तधन के दो भागों में संग्रहित है । पहले प्रेमचन्द उर्दू में लिखा करते थे । बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखना शुरु किया था । उनकी उर्दू रचनाएँ प्राय: 'जमाना' पत्रिका में प्रकाशित होती थी उनकी पहली मौलिक कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' मानी जाती है । जो सन् 1907 में जमाना में प्रकाशित हुई थी । सन् 1908 में उनका उर्दू कहानी संग्रह 'सोजे वतन' प्रकाशित हुआ, जो राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण था । अत: उसे अंग्रेज सरकार ने जफ्त कर लिया । उसके साथ ही प्रेमचन्द को अपना मूल नाम 'धनपत राय' छोड़कर 'प्रेमचन्द' रखना पड़ा और बाद में वे इसी नाम से हिन्दी में लिखते रहे । उनकी ख्याति भी इसी नाम के साथ जुड़ी है । इस नाम से प्रकाशित उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' है । पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से उन्हें अपनी उर्दू कहानियाँ को हिन्दी में

प्रकाशित करवाया, जो हिन्दी साहित्य जगत में काफी लोकप्रिय हुई (शर्मा : 1985 : 193)।

प्रेमचन्द की प्रमुख प्रतिनिधि कहानियों में *बड़े घर की बेटी, सुजान भगत, पूस की रात, आत्माराम, शतरंज के खिलाड़ी, दो बैलों की कथा, कफन, नशा, स्वामिनी, सवा सेर गेहूँ, आहुति, बाबाजी का भोग, नमक का दरोगा, पंच-परमेश्वर, समरयात्रा, ठाकुर का कुआँ, माँ, सोहाग का शव, ईदगाह, सती, निमंत्रण, रामलीला, चोरी , मन्दिर, प्रायश्चित, आत्मसंगित, हिंसा परमो धर्म, बहिष्कार, दिल की रानी, ममता, लाञ्छन, कायर, अनुभव, कप्तान साहब, इस्तीफा, मनुवृत्ति, गुली-डंडा, झाँकी, कामना तरू, अग्नि-समाधि, घासवाली, बड़े भाई साहब* आदि हैं (प्रेमचन्द : 1999 : अनुक्रमणिका)। इनमें से उनकी 'कफन', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'दो बैलों की कथा' आदि कहानियाँ न केवल हिन्दी की बल्कि विश्व की श्रेष्ठतम कहानियों में से हैं।

8.2 उपन्यास

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द के पदार्पण से पूर्व जितने भी उपन्यास लिखे गए थे वे प्रायः घटना प्रधान, उपदेश प्रधान या मनोरंजन प्रधान ही अधिक थे। अतः उस काल के खंड को हम उपन्यास साहित्य का 'शैशवकाल' या 'प्रयोगकाल' कह सकते हैं। उस काल में उपन्यास के क्षेत्र में भिन्न–भिन्न विषयों को लेकर नये–नये प्रयोग होते रहते थे। यद्यपि पारिवारिक व सामाजिक विषयों पर भी रचनाएं अवश्य होती थी, किन्तु न तो उस समय के उपन्यास में औपन्यासिक कला का विकास ही हुआ था और न ही सामाजिक समस्याओं को गहराई से पकड़ने की क्षमता ही तत्कालीन लेखकों में दिखाई देती है। विषयवस्तु के आधार पर प्रेमचन्द के उपन्यासों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – सामाजिक उपन्यास ओर राजनीतिक उपन्यास (रत्नाकर : 1979 : 39)।

8.2.1 सामाजिक उपन्यास

- सेवासदन
- वरदान
- प्रतिज्ञा

- निर्मला
- कयाकल्प
- गबन

8.2.2 राजनीतिक उपन्यास

- प्रेमाश्रम
- रंगभूमि
- कर्मभूमि
- गोदान
- मंगलसूत्र (अधूरा)

कायाकल्प और गबन यद्यपि सामाजिक उपन्यास है, तथापि इनमें राजनीतिक तत्व का भी पर्याप्त समावेश हो गया है ।

8.2.3 प्रेमचन्द के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

8.2.3.1 सेवासदन

वेश्या-समस्या और निम्न मध्यवर्ग की निर्बलता को लेकर लिखा गया यह प्रेमचन्द का पहला हिन्दी उपन्यास है, जिसे प्रेमचन्द ने स्वयं ही 'हिन्दी का बेहतरीन नोवेल' कहा है । 'सेवासदन' पहले उर्दू में बाज़ार-ए-हुस्न के नाम से लिखा गया था परंतु इसका प्रकाशन पहले हिन्दी में सन् 1998 में हुआ (रत्नाकर : 1979 : 43) । इस उपन्यास में प्रेमचन्द की चहुमुखी सामाजिक दृष्टि का सर्वप्रथम परिचय मिलता है । यह भारतेन्दु युग से चली आती हुई वैचारिक समस्याओं – दहेज-प्रथा, अनमेल-विवाह, वेश्यावृत्ति आदि का प्रथम रचनात्मक रूपायन है । इस उपन्यास में सुमन प्रमुख नायिका है ।

8.2.3.2 वरदान

'सेवासदन' के पश्चात् प्रेमचन्द 'वरदान' उपन्यास में ग्रामीण जीवन की अभावग्रस्त स्थितियों को तथा उनकी विडंबनाओं को दर्शाया गया है । यह उपन्यास भी हिन्दी में

प्रकाशित होने से पूर्व में लिखा गया था (रत्नाकर : 1979 : 28) । इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने अनमेल विवाह की समस्या को उठाकर उसका समाधान आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास की कथा विफल प्रेम की कहानी है । जिसमें प्रेमचन्द ने नायक के माध्यम से समाज सेवा एवं राष्ट्र गौरव की भावना को भी बल प्रदान किया है । प्रताप इस उपन्यास का नायक है ।

8.2.3.3 प्रतिज्ञा

'प्रतिज्ञा' वस्तुतः 'प्रेमा' उपन्यास का परिवर्द्धित, संस्कारित संस्करण है । प्रेमा का प्रकाशन प्रेमचन्द के अनुसार हिन्दी में हुआ है । मुंशी दयानारायण निगम को 17 जुलाई, 1926 ईस्वी में प्रेमचन्द ने जो पत्र लिखा है उसमें इसका उल्लेख है – सन् 1904 में एक हिन्दी नॉवेल प्रेमा लिखकर इंडियन प्रेस ने साया करवाया । लेकिन इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित प्रेमा के प्रथम संस्करण में सन् 1907 मुद्रित है । अतः प्रेमचन्द की प्रथम हिन्दी औपन्यासिक कृति 1907 में छपी प्रेमा है । बाद में यही कृति उर्दू में 'हमखुर्मा-ओ-हम सबाब' के अतिरिक्त 'बेवा' नाम से भी प्रकाशित हुई । अपने परिवर्द्धित रूप में यह प्रतिज्ञा शीर्षक से जनवरी 1927 से नवम्बर 1927 तक 'चाँद' में धारावाहिक रूप में छपकर वर्ष के अंत तक पुस्तक रूप में सामने आई (रत्नाकर : 1979 : 45) । वास्तव में देखा जाय, तो प्रेमा की ही कथा को प्रेमचन्द थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्रतिज्ञा में प्रस्तुत किया है । इसमें लेखक ने विधवाओं से संबंधित सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है ।

8.2.3.4 निर्मला

प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'निर्मला' (सन् 1927) उपन्यास मुख्यतः एक समस्या प्रधान उपन्यास है । इसमें लेखक ने दहेज प्रथा तथा अनमेल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों को अपने उपन्यास का विषय बनाया है । 'निर्मला' आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पर आधारित प्रेमचन्द का सशक्त उपन्यास है, जिसमें नारी जीवन की मर्मव्यथा को उद्‌घाटित करने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है (रत्नाकर : 1979 : 47) । आकार में भले ही यह उपन्यास लघु है, किन्तु इसकी कथावस्तु अनेक मार्मिक प्रसंगों को संजोए हुए है । निश्चय ही यह प्रेमचन्द की उद्देश्यपूर्ण औपन्यासिक कृति है तथा उपन्यास कला की दृष्टि से भी अद्वितीय है । इस उपन्यास की नायिका निर्मला है ।

8.2.3.5 कायाकल्प

यह प्रेमचन्द का पहला ऐसा उपन्यास है जिसकी मूल पांडुलिपि हिन्दी में मिलती है । प्रेमचन्द ने अब तक जितने भी उपन्यास लिखें, उससे एकदम भिन्न प्रकार का यह उपन्यास है । इसमें उन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ आध्यात्मिक विचारों पर अपनी सोच को प्रस्तुत किया है । देवप्रिया तथा उसके पति के चरित्र द्वारा जन्म-मरण के रहस्यों तथा पुनर्जन्म पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है (रत्नाकर : 1979 : 48) । प्रेमचन्द जैसे उपन्यासकार द्वारा ऐसे उपन्यास लिखे जाने पर आश्चर्य प्रकट करते हुए डॉ. गणेशन लिखतें हैं – "शायद भारत के हिन्दू समाज में रूढ़ मूल अंधविश्वासों और मूढ़ परंपराओं को दिखाना ही प्रेमचन्द जी का ध्येय रहा हो । प्रेमचन्द के इस उपन्यास में चमत्कारों की भरमार दिखाई देती है, जो उनकी औपन्यासिक कला के लिए उचित नहीं प्रतीत होती (रत्नाकर : 1979 : 49) ।"

8.2.3.6 गबन

सन् 1930 में प्रकाशित 'गबन' उपन्यास में प्रेमचन्द ने अपने अन्य उपन्यासों की भाँति कुछ सामाजिक समस्याओं को उठाया है और उसका उचित समाधान भी प्रस्तुत किया है (रत्नाकर : 1979 : 50) । इस उपन्यास की प्रमुख नायिका जालपा के द्वारा प्रेमचन्द ने मध्यवर्गीय स्त्रियों में पाये जाने वाली आभूषणप्रियता तथा रमानाथ के चरित्र द्वारा किस प्रकार व्यक्ति अपनी झूठी शान को बरकरार रखने के लिए इस हद तक चला जाता है कि वह कानूनी दावपेचों में उलझकर रह जाता है । इसके अलावा लेखक ने इस उपन्यास में यह भी बताने का प्रयास किया है कि भारतीय सामाजिक संरचना ही कुछ इस प्रकार सी हो गई है कि मनुष्य धन के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता है । वह नीति-अनिति, उचित-अनुचित आदि की कोई चिंता नहीं करता । यदि ऐसे में कोई व्यक्ति सच्चाई और इमानदारी से काम करता है तो वह समाज की नज़र में व्यवहार कुशल नहीं समझा जाता ।

8.2.3.7 प्रेमाश्रम

'प्रेमाश्रम' पहले 'गोशए-आफ़ियत' के नाम से उर्दू में लिखा गया था। अमृत राय के अनुसार मूल उर्दू पाण्डुलिपि का लेखन काल, 2 मई 1918 से लेकर 25 फरवरी 1920 तक है, जो कि पाण्डुलिपि पर ही अंकित है। लेखक ने शुरू में इसके दो नाम सोचे थे – नाकाम और नेकनामा। हिन्दी में इसका प्रकाशन सन् 1921 में हुआ। प्रेमचन्द ने सबसे पहले अपने इसी उपन्यास में जमींदारी शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाई है (रत्नाकर : 1979 : 53)। इस उपन्यास में जमींदार और किसानों के संघर्ष को शोषक और शोषितों के संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन की समस्याओं, किसानों की दयनीय स्थिति, जमींदारों तथा कारिन्दों द्वारा किसानों का शोषण तथा उन पर किये गए अत्याचार आदि सब का वर्णन इसमें किया गया है तथा अंत में ग्रामोद्धार का उपाय भी आदर्शवादी तरीके से प्रस्तुत किया है। प्रेमाश्रम पर गांधीवाद का प्रभाव है। वस्तुतः यह हिन्दी का पहला राजनीतिक उपन्यास है।

8.2.3.8 रंगभूमि

प्रेमचन्द का यह उपन्यास पहले 'चौगाने-हस्ती' नाम से उर्दू में लिखा जा चूका था। बाद में हिन्दी में 'रंगभूमि' (सन् 1928) नाम से लिखा गया। इसमें विदेशी उद्योगों का विरोध तथा राष्ट्रीय आंदोलनों का चित्रण हुआ है (रत्नाकर : 1979 : 55)। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र सूरदास है। इसमें सूरदास गाँधीवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। सत्य-अहिंसा, त्याग आदि सब का सुंदर समन्वय लेखक ने इसके चरित्र में दिखाने का प्रयास किया है। इसमें सूरदास की मुख्य कथा के साथ-साथ सोफिया और विनय की प्रेमकथा का भी प्रसंगोपात चित्रण किया गया है।

8.2.3.9 कर्मभूमि

सन् 1932 में प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' उपन्यास का प्रकाशन हुआ। मूलतः ये उनका एक समस्या प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास में एक साथ कई समस्याओं को लिया गया है। इसके कथानक में मुख्य रूप से राजनैतिक समस्याओं के साथ–साथ अछूत समस्या, किसानों की समस्या, वर्ग संघर्ष की समस्या तथा मंदिरों में महंतों के धार्मिक पाखंड,

सरकारी दमन आदि को भी चित्रित किया गया है । देश के तत्कालीन आंदोलनों से प्रेरित होकर प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में विविध समस्याओं के साथ–साथ उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है । अमरकान्त इस उपन्यासका प्रमुख पात्र है (रत्नाकर : 1979 : 65) ।

प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' उपन्यास में एक साम्य यह दिखाई देता है कि 'प्रेमाश्रम' में जहाँ प्रेमशंकर प्रेमाश्रम की स्थापना करता है, ठीक उसी तरह 'कर्मभूमि' में डॉ.शान्ति कुमार 'सेवाश्रम' खोलता है । जिसमें नागरिक आंदोलन चलाते हैं और ग्रमीण आंदोलनों का नेतृत्व इस उपन्यस का प्रमुख पात्र अमरकान्त करता है । लेकिन फिर भी प्रेमचन्द का ये उपन्यास उनके 'प्रेमाश्रम' से एक कदम आगे हैं । क्योंकि 'प्रेमाश्रम' में केवल किसानों का ही संघर्ष चित्रित है तो 'कर्मभूमि' में मजदूर–किसान दोनों का । मजदूर म्युनिसिपल कारपोरेशन के खिलाफ़ लड़ रहे हैं तो किसान जमींदारों के खिलाफ़ । 'प्रेमाश्रम' के किसानों में वो एकता नहीं थीं, वे किसी मसले पर एकजुट नहीं हो पाते थे । किन्तु 'कर्मभूमि' के किसान संघटित हैं, उन्हें मध्यवर्गीय नेता भी मिल गए हैं ।

8.2.3.10 गोदान

'गोदन' प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में ही नहीं बल्कि संपूर्ण हिन्दी साहित्य जगत में सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है । सन् 1936 में प्रकाशित गोदान की अंतिम पूर्ण कृति है (रत्नाकर : 1979 : 68) । इसे भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य भी कहा गया है । समग्र अंग्रेजी शासन काल के दौरान किसान का वास्तविक जीवन गोदान में ही स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है । ऐसा माना जाता है कि किसान बेचारा मेहनत-मजदूरी करके एक-एक पाई कमाता है किन्तु उसे पेटभर दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती । ऊपर से सुदखोरों और महाजनों का पंजा उसे अलग से दबोचे रखता है । 'गोदान' में हम देखते हैं कि पटवारी, जमींदार के चपरासी, कारिन्दे, थानेदार, कान्सटेबल, कानूनगों, तहसिलदार, डिप्टी मेजिस्ट्रेट, कलक्टर, कमिश्नर दूसरे शब्दों में अंग्रेजों की सारी प्रशासनिक मशीनरी किसान के पीछे पड़ी हुई थी । यहाँ तक कि डॉक्टर, इन्सपेक्टर, विभिन्न महकमों के हाकिम, पादरी सभी किसान से रसद लेते थे । जमींदार जब किसी बड़े अफ़सर को दावत देता था तो उसका मार भी किसानों पर ही पड़ता था । अत: गोदान भारतीय कृषक जीवन की त्रासदी है । 'गोदान' की पूरी कहानी भूमिधर किसान के भूमिहीन मजदूर हो जाने की

प्रक्रिया है । इस उपन्यास का प्रमुख पात्र चार-पाँच बीघे जमीन जोतने वाला एक मामूली किसान होरी है ।

8.2.3.11 मंगलसूत्र

'मंगलसूत्र' प्रेमचन्द का अंतिम और अधूरा उपन्यास है । प्रेमचन्द इस उपन्यास के केवल चार ही अध्याय लिख सके थे और बाद में उनकी मृत्यु हो जाती है । संयुक्त परिवार में भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के सदस्यों के कारण जो आपसी मतभेद-मनभेद और गृहकलेश होता है, उसकी कथा इस उपन्यास में मिलती है (रत्नाकर : 1979 : 69) । 'मंगलसूत्र' उपन्यास की कथा का प्रारंभ एक पारिवारिक जीवन की कथा से होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे प्रेमचन्द स्वयं अपनी आत्मकथा को उपन्यास का रूप देकर लिख रहे हो । देवकुमार इस उपन्यास का नायक है ।

8.3 नाटक

प्रेमचन्द ने कहानी एवं उपन्यासों के अलावा नाटक लिखने का प्रयास भी किया था किन्तु उनको उसमें अधिक सफलता नहीं मिली । नाटक लिखने की शुरुआत उन्होंने अपने एक दूर के मामा के प्रणय प्रसंग को लेकर प्रहसन के रूप में की थी । लेकिन वह किसी कारणवश पाठकों के सामने उभरकर सामने नहीं आ सका । उनके मुख्य नाटक निम्न प्रकार से हैं –

1) संग्राम
2) कर्बला
3) प्रेम की वेदी

8.4 निबंध

प्रेमचन्द के निबंध साहित्य में देखा जाय तो 'कुछ विचार' (दो भागों में) यह उनका निबंध संग्रह है, जो आगे चलकर 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ था ।

8.5 जिवनी साहित्य

प्रेमचन्द के जीवनी साहित्य के अंतर्गत –

1) महात्मा शेखसादी
2) दुर्गादास तथा
3) कलम, तलवार और त्याग आदि का समावेश होता है ।

8.6 अनुवाद

प्रेमचन्द ने कुछ प्रसिद्ध रचनाओं का अनुवाद भी किया था, जो इस प्रकार है –

1) 'सुखदास' – जार्ज इलियट कृत 'साइलस मार्नर' का साहित्य रुपांतर
2) 'अहंकार' – अनातोले फ्रांस कृत 'थायस' का अनुवाद
3) टॉलस्टॉय की कहानियाँ
4) 'आजाद कथा' – रतननाथ सरशार कृत 'फसान–ए–आजाद' का अनुवाद
5) 'हड़ताल' – गॉल्सवर्दी के नाटक 'स्ट्राइक' का अनुवाद
6) 'चाँदी की डिबियाँ' – गॉल्सवर्दी के नाटक 'सिल्वर बॉक्स' का अनुवाद
7) 'न्याय' – गॉल्सवर्दी के नाटक 'जस्टिस' का अनुवाद

इस प्रकार प्रेमचन्द का लेखन हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य धरोहर है । उनका लेखन न केवल संख्या की दृष्टि से बल्कि विषयवस्तु की दृष्टि से भी विशाल है; जिनमें भारतीय समाज की सच्ची झाँकियाँ देखने को मिलती है ।

9. जीवन विराम

संसार का यह शाश्वत सत्य है कि जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित ही है। 'गोदान' के प्रकाशन के बाद जब प्रेमचन्द अपने 'मंगलसूत्र' के ताने बाने बुन ही रहे थे कि उन्हें भयंकर बीमारी ने जकड़ लिया (रत्नाकर : 1979 : 65)। अबकि बार वे ऐसे बीमार पड़े कि फिर उठ ही न पाये और अपने अंतिम समय में भी उन्हें 'हंस' की चिन्ता बराबर लगी रही थी। आखिर 8 अक्तूबर 1936 ई. को उन्होंने इस संसार से चीर विदाई ले ली।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गोपाल, मदन । 1979 । कलम का मजदूर प्रेमचन्द, राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।

2. पांडेय, दयानन्द (संपादक) । 1998 । प्रेमचन्द : व्यक्तित्व और कृतित्व, किताब महल, इलाहाबाद ।

3. गोयनका, डॉ. कमलकिशोर । 2002 । प्रेमचन्द अध्ययन की नयी दिशाएं, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

4. राय, अमृत । 1997 । प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

5. देवी, शिवरानी । 1956 । प्रेमचन्द : घर में, सरस्वती प्रेस, बनारस ।

6. शर्मा, डॉ. रामविलास । 1985 । प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

7. प्रेमचन्द । 1999 । प्रेमचन्द की 51 अनमोल कहानियाँ, न्यू साधना पाकेट बुक्स, दिल्ली ।

8. रत्नाकर, डॉ. मोहनलाल । 1979 । प्रेमचन्द–युग का हिन्दी उपन्यास (दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध), ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली ।

तृतीय अध्याय

हिन्दी साहित्य में नारी केंद्रित उपन्यास : विहंगावलोकन

साहित्य और मानव जीवन एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सबंधित है । दोनों का एक दूसरे से नाता एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह है । एक के अभाव में दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता । प्रत्येक युग के साहित्य में युग प्रभाव की झाँकी भी अवश्य देखने को मिलती है । अतः प्रत्येक साहित्य में तत् युगीन समाज के दर्शन अवश्य होते हैं । साहित्यकार समाज–रथ का सारथी है और युगीन परिस्थितियाँ उसकी साथी है । एक सच्चा साहित्यकार कभी इनसे विमुख होकर साहित्य रचना नहीं कर सकता ।

मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है – नारी–जीवन । उसके बिना मनुष्य का जीवन अपूर्ण ही है । मनुष्य–जीवन का चित्रित करने वाला साहित्य भी उसकी अपेक्षा नहीं कर सकता । सदियों से नारी साहित्य के केन्द्र में रही है । अतः साहित्य और नारी का सम्बन्ध शाश्वत है तथा उपन्यास मानव जीवन को समग्र रूप से चित्रित करने वाली सशक्त साहित्यिक विधा है । इसमें मानवीय संवेदनाएँ प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति पाती है । हिन्दी साहित्य में उपन्यास एक सर्वाधिक लोकप्रिय विधा होने के नाते उसमें भी नारी जीवन का चित्रण होना स्वाभाविक बात है । उपन्यास विधा के आरंभ से लेकर आज तक नारी जीवन के विविध पक्षों का चित्रण उसमें मिलता है । 'नारी का जीवन भी समाज में कम संघर्षशील नहीं रहा । उत्थान–पतन के कितने दौरों सें गुजरती हुई नारी आज वर्तमान में अपनी स्थिति तक पहुँच सकी है ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में नारी केंद्रित उपन्यासों के विहंगावलोकन के लिए सुविधा की दृष्टि से उसे तीन भागों में बाँटकर देखा जा सकता है (रस्तोगी : 2008 : 55)।

1) प्रेमचन्द पूर्व युगीन उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी

2) प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी

3) प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासकारों के उपन्यासों मे नारी

1. प्रेमचन्द पूर्व युगीन उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी

हिन्दी उपन्यासकारों ने आरंभ से ही नारी को प्रमुख या केन्द्र में रखकर उपन्यासों की रचना की है । इन उपन्यासकारों ने युगीन परिस्थितियों के अनुरूप ही नारी चित्रण किया है । प्रेमचन्द पूर्व युग में नारी की स्वतंत्र अस्मिता नहीं थी वह भोग्या के रूप में ही अधिक चित्रित हुई । इस युग के उपन्यासकारों पर रीतिकालीन परम्परा तथा संस्कृत के नीति ग्रंथों का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है । अतः इस युग में दो प्रकार के उपन्यासों की रचना अधिक हुई जिनमें एक है – उपदेश प्रधान और दूसरे मनोरंजन प्रधान उपन्यास । 'इन उपन्यासों में दो अलग–अलग छोरों पर नारी चित्रण किया गया है या तो देवता के आदर्श के रूप में या दानवी तथा कुलटा के रूप में । मानवीय दुर्बलताओं से युक्त यथार्थ जीवन की नारी के दर्शन इसमें नहीं होते । अर्थात् इसमें स्वाभाविकता कम है । उपन्यासकारों का ध्यान विशेष रूप से उपदेश देना तथा जासूसों के कार्य-तिलस्म आदि बातों पर होने के कारण उन्होंने नारी–जीवन का विशेष चित्रण नहीं किया है । केवल कथावस्तु को बढ़ाने के लिए एवं रोचक बनाने के लिए आवश्यकता के अनुसार नारी चित्रण का उपयोग किया गया है (कुलकर्णी : 2006 : 9) । अतः इन उपन्यासों में चित्रित नारियों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व व्यक्तित्व दिखाई नहीं देता । ये नारियाँ उपन्यासकारों के हाथ की कठपुतली ही बनी हुई है । इस काल के अधिकतर उपन्यासों में परम्परा से प्राप्त नारी-स्वरुप को ही चित्रित किया गया है' ।

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरु' में एक आदर्श पतिव्रता नारी का चित्रण किया गया है । इस उपन्यास की प्रमुख नायिका है – मदनमोहन की पत्नी सुशीला । वह अपने पति को परमेश्वर मानकर उसकी सेवा करती है । लेखक ने उसे एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है । सुशीला अपने पति के सुख में अपना सुख और उनके दुःख में अपना दुःख समझती है । मदनमोहन अपने कुछ मित्रों के साथ मिलकर भोग–विलासी जीवन जीता है और कुमार्ग पर चलकर कई समस्याओं को अपना लेता है । सुशीला को कुमार्ग पर गति करते हुए अपने पति की बराबर चिन्ता सताये रखती है परंतु कभी उस पर नाराज नहीं होती । वह अपने पति को योग्य मार्ग पर लाना चाहती है । इसके लिए वह अपने पति के मित्र ब्रजकिशोर की सहायता भी लेती है । अंतत : पति अपनी गलतियों पर पछताता है । ब्रजकिशोर ही सच्ची

परीक्षा के समय उसके काम आता है (रत्नाकर : 1979 : 75) । अतः वह उनका परीक्षा गुरु है । अंत में मदनमोहन योग्य मार्ग पर आ जाता है । इसमें नारी के सनातनी रूप को प्रस्तुत किया गया है और सुशीला एक सती-साध्वी के रूप में उभरकर सामने आती है ।

प्रेमचन्द पूर्व युगीन हिन्दी उपन्यासों में नारी केंद्रित उपन्यासों की रचना करने वालों में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है । किशोरीलाल गोस्वामीजी के प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में 'प्रणयिनी परिणय', 'प्रेममयी,' 'माधवी–माधव' या 'मदन मोहिनी,' 'पुनर्जन्म या सौतिया डाह,' 'स्वर्गीय कुसुम या कुसुम कुमारी,' 'लावण्यमयी', 'लीलावती या आदर्श सती,' 'तरुण तपस्विनी या कुटिर-वासिनी' तथा 'अँगूठी का नगीना' आदि विशेष उल्लेखनीय है (रत्नाकर : 1979 : 77) । गोस्वामी जी ने जहाँ एक ओर आदर्श नारी पात्र हिन्दी उपन्यास जगत को भेंट किये हैं, वहीं दूसरी ओर ऐसे नारी चरित्रों को भी अपने उपन्यासों में उभारा है , जो एकदम निकृष्ट या नीच कोटी के हैं । अर्थात् नारी के देवी और कुलटा दोनों ही रूपों को प्रस्तुत किया है । उनके आदर्श नारी पात्रों में 'पुनर्जन्म' या 'सौतिया डाह' की सुन्दरी, 'स्वर्गीय कुसुम या कुसुम कुमारी' की कुसुम , 'लावण्यमयी' की लावण्य, 'लीलावती' की लीलावती, 'तरुण तपस्विनी या कुटीर वासिनी' की चपला और सौदामिनी, 'अँगूठी का नगीना' की लक्खी, 'माधवी–माधव' या 'मदन मोहिनी' की माधवी, 'प्रेममयी' की अमला, 'प्रणयिनी परिणय' की प्रणयिनी तथा 'चपला' की चपला और मालती का नाम प्रमुख है (रत्नाकर : 1979 : 82) । ये नारियाँ पौराणिक नारी पात्रों की तरह आदर्श चरित्र वाली सती-साध्वी है । गोस्वामी जी की उपरोक्त सभी नारियाँ एक बार जिससे प्रेम करती हैं, जीवन पर्यन्त उसी की होकर रहना चाहती हैं ।

सामाजिक तथा नैतिक उपदेश प्रधान उपन्यासों के साथ-साथ इस युग में मनोरंजन प्रधान उपन्यासों की धारा भी प्रवाहित हुई जिसमें तिलस्मी और ऐयासी उपन्यास तथा जासूसी उपन्यासों का समावेश होता है । हिन्दी में तिलस्मी एवं ऐयासी उपन्यासों की परंपरा को चलाने का श्रेय देवकीनन्दन खत्री को जाता है । उनके उपन्यास तत्कालीन पाठकों की रूचि के अनुसार ही थे । उपन्यासों की कथा नायक-नायिका के प्रेम संबन्ध से जुड़ी रहती परन्तु उनके मिलन में अनेक बाधाओं का योग रहता । ऐयारों की सहायता से नायक-नायिका का मिलन होता था । कथावस्तु को अधिक रोचक बनाने के लिए तिलस्मों

की सृष्टि भी की जाती थी । ये उपन्यास केवल मनोरंजन मात्र के उद्देश्य से ही लिखे गये थे तथा इनमें तिलस्मी प्रभाव अधिक होने के कारण स्त्रियों के प्रति श्रृंगारिक दृष्टि ही प्रमुख रही । अत: इनमें न तो कोई स्त्री-चरित्र ही व्यवस्थित रूप से उभरकर सामने आ पाया है और न ही नारी जीवन से सम्बन्धित किसी समस्या पर लेखक ने प्रकाश डाला है । तिलस्मी प्रकार के उपन्यासों में देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता,' 'चन्द्रकान्ता सन्तती' , 'वीरेन्द्रवीर' , 'कुसुमकुमारी,' 'भूतनाथ' आदि प्रमुख है । इन उपन्यासों में प्रेम भावना को महत्व दिया गया है । अत: नारी का चित्रण प्रेम के साधन के रूप में हुआ है । नायिका का सौन्दर्य-वर्णन, प्रेमाभिव्यक्ति तथा आचार-व्यवहार में रीतिकालीन वर्णन की स्पष्ट झाँकी दिखाई देती है (रस्तोगी : 2008 : 40) । भारतीय नारी के परंपरागत गुणों के दर्शन इन उपन्यासों में नहीं होते । कोमलता, लज्जाशीलता आदि अपनी विशेषताओं को छोड़कर यह नारी पुरुषों के समान व्यवहार करती दिखाई देती है ।

इस प्रकार प्रेमचंद पूर्व युगीन उपन्यासों में नारी के जो चित्र मिलते हैं वे ज्यादातर आदर्शात्मक ही अधिक रहे हैं तथा उनकी नायिकाओं के वर्णन रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार ही थे । अत : उनके बाह्य अथवा शारीरिक सौन्दर्य का ही इनकी विशेषता रही है । इस युण के सामाजिक उपन्यासों में भी नारी के जो चित्र उपस्थित हुए है, वह एकांगी व अधूरे से प्रतीत होते हैं क्योंकि तत्कालीन लेखकों की दृष्टि समाज सुधार की अधिक रही है तथा वे धार्मिक विचारों से अधिक प्रभावित रहे, परिणामस्वरूप वे उपन्यासकार के बजाय उपदेशक अधिक लगते हैं (रस्तोगी : 2008 : 41) । यकिनन इस युग के पारिवारिक चित्रण में नारी को स्थान दिया गया है, लेकिन वह समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में न होकर केवल पुरुष की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला एक साधन मात्र रह गई है । उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व उभरकर सामने नहीं आ सका । कुछ उपन्यासों में नारी संबंधी विविध समस्याओं का चित्रण तो मिलता है किन्तु उसका कोई निश्चित समाधान नहीं मिलता । इस युग की नारी का स्थान घर की चार दीवारियों के भीतर ही अधिक रहा ।

2. प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी

प्रेमचन्द पूर्व युग में नारी किसी भी तरह स्वतन्त्र नहीं थी । हालाँकि प्रेमचन्द युग की नारी भी अपनी प्राचीन मान्यताओं व सामाजिक रुढ़ियों से अपने को सर्वथा मुक्त नहीं कर पायी थी । तरह–तरह के सुधारवादी कार्यक्रमों के चलते भी नारी अनेक यातनाओं को सहती आ रही थी । पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था ने उसे दोबोचकर रखा था । ऐसे में प्रेमचन्द ऐसी शोषित, निराधार, पीड़ित, लाचार व मजबूर नारी जाति के वकील बनकर प्रस्तुत होते हैं । नारियों के प्रति उन्हें विशेष सहानुभूति थी । भारतीय समाज में हो रही नारी की दुर्दशा को अपने उपन्यासों में यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करके प्रेमचन्द ने उसके दुःख-दर्द, उसकी कुण्ठित स्थिति आदि को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया ।

प्रेमचन्द के अलावा इस युग के नारी केंद्रित उपन्यासों की रचना करने वाले उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद का नाम उल्लेखनीय है । उनके 'कंकाल' उपन्यास में उन्होंने समाज के खोखलेपन की भयंकरता को प्रस्तुत करते हुए यमुना तथा घण्टी के चरित्र द्वारा सामाजिक बंधनों के परिणामस्वरूप हुई नारी की दुर्दशा को प्रस्तुत किया है । तारा इस उपन्यास की प्रमुख नायिका है । वह विधवा रामा और देवनिरंजन की अवैध संतान है । एक दिन काशी में गंगा स्नान के समय धोखे से वह स्त्रियों का व्यापार करने वाली एक स्त्री के हाथ में पड़ जाती है और वह उसे बलपूर्वक वेश्या गुलेनार बना देती है । एक बार वेश्या जीवन व्यतित करने के पश्चात् तारा को पुनः कभी समाज में स्थान नहीं मिल पाता । मंगल उसे वेश्या जीवन से मुक्त तो कराता है तथा दोनों पति–पत्नी सा जीवन भी जीते हैं; आखिर में वह उसे गर्भवती बनाकर धोखा दे कर भाग खड़ा होता है (रत्नाकर : 1979 : 55) । धार्मिक अन्धविश्वास के प्रभाव के कारण तारा के माता-पिता भी उसे दुबारा अपनाना नहीं चाहते । इस उपन्यास में लेखक ने स्त्री-पुरुष के अवैध सम्बन्धों पर भी प्रकाश डाला है ।

'तितली' उपन्यास में प्रसाद जी ने तितली और शैला के चित्रांकन द्वारा भारतीय एवं पाश्चात्य आदर्शों की तुलना की है । तितली इस उपन्यास की प्रमुख नायिक है । वह एक पतिपरायण नारी है । जीवनपथ पर उसका पति उसे अकेला छोड़कर चला जाता है किन्तु फिर भी वह धैर्य नहीं खोती । उसे पूर्ण विश्वास है कि एक दिन उसका पति (

मधुवन) लौटेगा (रत्नाकर : 1979 : 57) । मधुवन के जाने के बाद वह स्वावलंबित जीवन व्यतीत करती है । वह बड़ी स्वाभिमानी नारी है ।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' प्रेमचंद जी की परंपरा के उपन्यासकारों में से थे । उनके 'माँ' उपन्यास में उन्होंने सावित्री और सुलोचना दो माताओं का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है । इस कृति में लेखक ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि यदि माता अदूर्दशिनी होती है, तो उसके अनेक दुष्परिणाम सामने आते हैं और यदि माता बुद्धिमान व दूर्दर्शिनी है, तो उसका परिणाम अच्छा ही होता है (रत्नाकर : 1979 : 59) । इस उपन्यास में माताओं के बच्चों पर पड़ते प्रभाव को दिखाया गया है ।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि प्रेमचन्द युग में आकर लेखकों ने नारी के प्रति एक सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया है, जो उत्तरोत्तर विकसित होता जा रहा था । अब नारी केवल भोग विलास की सामग्री न होकर घर, परिवार, समाज व देश की सहानुभूति की वस्तु बन गई थी । तत्कालीन सुधारवादी आन्दोलनों ने उसका रूप सशक्त बना दिया था । डॉ शैल रस्तोगी के शब्दों में कहे तो – "प्रेमचन्द के पूर्व नारी केवल विलास की सामग्री थी । नारी के प्रेयसी रूप के समक्ष नारी के विभिन्न रूप माँ, बहन, पुत्री, भाभी आदि अधिक विकसित न हो सके थे । नारी का क्षेत्र बहुत संकुचित था । घर के सीमित क्षेत्र से नारी ने अभी बाहर की ओर दृष्टि नहीं डाली थी । प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यासकारों के नारी–पात्र लेखकों के हाथ की कठपुतली मात्र थे । जीवन के संघर्षों को झेलने की क्षमता उनमें नहीं थीं । प्रेमचन्द ने बन्धनों एवं घरों में जकड़ी नारी का सर्वप्रथम उद्धार किया । उनकी तथा उनके युग की नारियाँ काफी प्रगतिशील हैं और उनमें समाज, जाति और देश–सुधार की भावना वर्तमान है । इस समय के उपन्यासों में नारी जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है (हिन्दी उपन्यासों में नारी : 2008 : 30) ।"

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि पतित से पतित नारियों के प्रति भी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया तथा नारी को उसके वास्तविक रूप में मानवता के गुण-दोषों से युक्त चित्रित किया गया । जबकि प्रेमचन्द पूर्व युग की नारी या तो देवी या राक्षसी रूप में अधिक चित्रित की गई थी लेकिन इस युग की नारी न तो देवी है, और न ही राक्षसी बल्कि एक मानवी है जिसमें सभी प्रकार के मानवीय गुण व

दुर्बलताएं विद्यमान है । अर्थात् नारी के यथार्थ व वास्तविक रूप को ही इस युग के उपन्यासो में स्थान मिला है ।

3. प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासकारों के उपन्यासों मे नारी

सन् 1936 में प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक समृद्ध युग का अंत होता है और एक नवीन युग का आरम्भ होता है । प्रेमचन्दोत्तर काल की सामाजिक परिस्थितियों में प्रेमचन्द युग की तुलना में काफी परिवर्तन आता है । अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय आन्दोलन तथा विविध सामाजिक संस्थाओं के परिणामस्वरूप इस युग में व्यक्ति स्वातंत्र्य बढ़ने लगा ।

इस युग के उपन्यासकारों में मार्क्सवाद का प्रभाव सबसे ज्यादा परिलक्षित होता है । मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री शोषित वर्ग है और पुरुष शोषक वर्ग । अत: दोनों में संघर्ष निरन्तर चलता ही रहेगा । सामाजिक विकास के लिए नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता जरूरी है । समाज की प्रगति भी नारी के सहयोग के बिना असम्भव है । वह भी पुरुष के समान ही हर क्षेत्र में बराबर की हकदार है । वह किसी भी तरह से पुरुष से एक कदम भी पीछे नहीं है । मार्क्स की इस स्त्री विषयक धारणा ने समकालीन उपन्यासों को जैसे झकझोंर कर रख दिया । जिसके परिणामस्वरूप उनकी स्त्री विषयक दृष्टि ही बदल गई । सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन तथा राष्ट्रीय चेतना की लहर को परिणामस्वरूप नारी ने देश की स्वतन्त्रता में पुरुष के बराबर का हिस्सा लिया (रस्तोगी : 2008 : 136) । अब धीरे–धीरे वह हर क्षेत्र में पुरुष के सामने उनके कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगी । घर, समाज, देश सब पर उसका समान अधिकार है । नारी चरित्र में आये इस बदलाव को तत्कालीन उपन्यासकारों ने बखूबी प्रस्तुत किया है । 'इस काल में लेखक ने नारी मन की उथल-पुथल, स्त्री-पुरुष के आकर्षण–विकर्षण अर्थात् काम-भाव की समस्या को गहराई से देखना समझना प्रारम्भ किया । इसके अतिरिक्त नारी की वैयक्तिक और आर्थिक स्वतंत्रता को जितना सबल समर्थन इस युग के उपन्यासों में मिला है, उतना पूर्ववर्ती में नहीं मिलता (रस्तोगी : 2008 : 137) ।'

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रारम्भ जैनेन्द्रकुमार के 'परख' और 'सुनीता' उपन्यास से होता है । उनके 'परख' उपन्यास में 'कट्टो' नामक बाल-

विधवा नारी के मानस को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है (रस्तोगी : 2008 : 138) । बहुत छोटी सी उम्र में उसका सुहाग उजड़ गया था । युवावस्था में कदम रखते ही अनायास ही वह अपने बचपन के साथी सत्यधन को मन ही मन अपना लेती है । परन्तु सत्यधन का विवाह अन्यत्र हो जाता है । इस समग्र उपन्यास में 'कट्टो' एक आदर्श चरित्र के रूप में उभर कर आती है ।

इलाचन्द्र जोशी जी के 'निर्वासित' उपन्यास में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रस्तुत किया गया है । जब शोषित वर्ग पर अत्याचार बढ़ जाते हैं, तब वह धीरे-धीरे अपने भीतर छिपे अन्तर्विरोध को प्रस्तुत करने लगते हैं । कष्ट असह्य हो जाने पर सर्वहारा वर्ग के व्यक्तियों की प्रतिक्रिया का मनोविज्ञान इसमें निहित है (रत्नाकर : 1979 : 52) । शारदा देवी तथा प्रतिमा इस उपन्यास की ऐसी नारी पात्रा है, जो महज परिस्थितियों की दासी मात्र है । उसकी दशा एक कठपुतली से अधिक अच्छी नहीं है । वह धीरज से प्रेम करते हुए भी ठाकुर साहब के अत्याचारों को सहती है । एक नारी के जीवन की विवशता एवं करुणता लेखक ने उसके चरित्र के माध्यम से व्यक्त की है ।

समकालीन हिन्दी उपन्यास कई तरह से पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है । अब तक जो विमर्श 'दलित विमर्श' तथा 'नारी विमर्श' हाशिये पर थे, वे अब केन्द्र में आने लगे हैं । सन् साठ के पश्चात् तो महिलाओं ने भी लेखन कार्य में अपनी पकड़ अच्छी तरह से जमा ली है । इन लेखिकाओं ने अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक जरुरतों को ध्यान में रखते हुए उपन्यास जगत में भी उसे प्रस्तुत किया है । अब वे गुप्त जी द्वारा चित्रित की गई 'आँचल में दूध और आँखो में पानी' बाली नारियाँ बनकर रहना नहीं चाहती । यहाँ से नारी का एक नया रूप उभरकर सामने आने लगा ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आज के महिला लेखन में आँसुओं की जगह संघर्ष , चुनौतियों और सशक्तीकरण ने ले ली है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रस्तोगी , डॉ. शैल । 2008 । हिन्दी उपन्यासों में नारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

2. कुलकर्णी, डॉ. रेखा । 2006 । हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

3. रत्नाकर, डॉ. मोहनलाल । 1979 । प्रेमचन्द युग का हिन्दी उपन्यास, (दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध) ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली ।

चतुर्थ अध्याय

प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यासों में चित्रित नारी संवेदना

प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज में दलित एवं नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इसका एक मात्र कारण था– प्राचीन वर्ण व्यवस्था तथा लोगों की संकुचित एवं स्वार्थी मनोवृत्ति। प्रेमचन्द अपनी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से एकदम चीढ़ चुके थे। वे औरत को पति की खुशामत करती हुई घर की चार दीवारी में कैद तथा केवल बच्चें पैदा करने की मशीन के रूप में देखना पसन्द नहीं करते। वे उसे मुक्त एवं आत्मनिर्भर देखना चाहते थे। अतः उनकी सारी संवेदना उन्हीं के पक्ष में अधिक रही है। डॉ. सत्यवती मित्तल के शब्दों में कहें तो– "प्रेमचन्द ने जिस समय लिखना प्रारम्भ किया उस समय भारतीय नारी समाज में एक ओर घोर रुढ़िवादिता और पिछड़ापन और दूसरी ओर आधुनिक विलासिता विद्यमान थी। एक के मूल में था पतनशील सामंतवाद और दूसरे के मूल में था पतनशील पूँजीवाद। प्रेमचन्द नारी की असहायता पर करूणा विगलित थे और मिथ्या प्रदर्शन पर चिन्तित थे। उनका हृदय उनके प्रति सच्ची सहानुभूति से भरा था। समाज द्वारा जाने या अनजाने में किए गए समस्त पापों को मिटा देने का उन्होंने बीड़ा उठाया और अपने उपन्यासों में उसकी गई गुजरी दशा का ऐसा चित्र खींचा कि पत्थर भी पिघल उठे। इनमें नारी–जीवन की निरीह विवश्ता का क्रन्दन भी है और उसे सुधारने का जागरुक प्रयास भी (भारतीय जनजागरण और प्रेमचन्द के उपन्यास : 2008 : 84)।"

प्रेमचन्द ने नारी जीवन के प्रत्येक पहलुओं को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है तथा नारी जीवन से सम्बन्धित विविध प्रकार की समस्याओं को प्रस्तुत करके नारी को सचेत करने की चेष्टा भी की है। उन्होंने नारी की बाल्य, युवा, प्रौढ़ तथा वृद्ध आदि सभी अवस्थाओं एवं बहन, बेटी, पत्नी, माँ, सास, ननद आदि विविध रूप को बखूबी अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। साथ ही सदियों से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक धरातल पर शोषण का शिकार होती आ रही नारी किस प्रकार ऐसी विरोधी परिस्थितियों का सामना करते हुए भी उपने उत्तरदायित्व को निभाते हुए उदात्त व्यक्तित्व की स्थापना करती है, इसका मार्मिक चित्रण भी प्रेमचन्द ने किया है। उनकी दृष्टि में नारी त्याग एवं बलिदान की मूर्ति है।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में नारी के शाश्वत रूप को चित्रित किया है । वे नारी को महज एक वासना की कठपुतली या वासनापूर्ति का साधन मात्र न मानकर उसके चरित्र की महानता के दर्शन भी करते हैं । इसीलिए उन्होंने समाज में पीड़ित–प्रताड़ित नारी को न केवल सामाजिक धरातल पर बल्कि राजनैतिक धरातल पर भी समान अधिकार दिलवाने की कोशिश की है (रत्नाकर : 1979 : 54) । प्रेमचन्द की नारी विषयक धारणा अपने पूर्ववर्ती लेखकों की नारी विषयक धारणाओं से सर्वथा भिन्न थी । उनकी दृष्टि में नारी सम्मान की अधिकारीणी है । वह किसी भी परिस्थिति में किसी भी रूप में धिक्कार या दंड की पात्रा नहीं हो सकती क्योंकि वह स्वयं क्षमा और सहनशीलता की साक्षात देवी है । इसीलिए प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों के प्रति विशेष सहानुभूति दर्शायी है ।

जैसा कि पहले ही इस बात पर विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है कि प्रेमचन्द युगीन समाज में नारियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता था । उनके साथ दोगली नीति से काम लिया जाता था । एक ओर तो कहने के लिए उन्हें देवी, सरस्वती, माता, लक्ष्मी आदि कहकर उनके विविध रूपों की वंदना की जाती थी तो दूसरी ओर अपने ही घर की बहू–बेटियों को न वो मान–सम्मान ही प्राप्त था और न समाज में उनके अधिकारों की रक्षा ही हो पाती थी (रत्नाकर : 1979 : 55) । प्रेमचन्द ने अपने सभी उपन्यासों में नारी के इसी उत्पीड़न को स्थान दिया है ।

प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यासों में नारी जीवन की जो विविध समस्याएँ हैं वे उनके वैवाहिक जीवन से अधिक जुड़ी हुई हैं । उन नारियों के दाम्पत्य जीवन में अधिकतर नीरसता, विफलता ही नजर आती है । इसके पीछे कई कारण है, परन्तु सबसे बड़ा कारण था तत् युगीन सामाजिक व्यवस्था । हाँ, यह बात सत् प्रतिशत सच है कि प्रेमचन्द युगीन नारी की दयनीयता का मूल तत् युगीन सामाजिक व्यवस्था ही थी । वैसे तो नारी और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं और साथ ही समाज के अभिन्न और अनिवार्य अंग भी । समाज–व्यवस्था का सन्तुलन और संगठन इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे है । नारी और पुरुष का पारस्परिक सहयोग समाज की प्रगति की दिशा में अग्रसर करता है । लेकिन नारी पुरुष के सम्बन्धों का तनाव एवं संघर्ष अनेक सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करने वाला है । प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज में नारी और पुरुष के सम्बन्धों में तनाव की स्थिति चल रही थी, जिसके लिए परम्परागत जीवन

मूल्यों एवं सामाजिक आदर्शों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है । नैतिकता और आदर्श के नाम पर समय–समय पर भारतीय नारी पर जो अनुज्ञाएँ आरोपित की गयी वे कालान्तर में उसके लिए सामाजिक अवरोध की बेड़ियाँ बन गयीं । इन श्रृंखलाओं में जकड़ी हुई नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहा । नारी का जीवन जैसे एक अभिशाप ही बनकर रह गया । नारी की स्थिति सबसे अधिक दयनीय तब बन जाती थी जब उसे उसके अनुरुप या इच्छित जीवन साथी नहीं मिल पाता (कुलकर्णी : 2008 : 45) । इससे उसका व्यक्तिगत व दाम्पत्य जीवन तहस–नहस हो जाता था और अनमेल विवाह जैसी समस्या और भी अधिक भयंकर बनती नजर आती थी ।

1. सेवासदन में चित्रित नारी संवेदना

वेश्या समस्या और निम्न मध्यवर्ग की निर्बलता को लेकर लिखा गया 'सेवासदन' प्रेमचन्द का पहला हिन्दी उपन्यास है, जिसे प्रेमचन्द ने स्वयं ही हिन्दी का बेहतरीन नोवेल कहा है । 'सेवासदन' पहले उर्दू में 'बाजार–ए–हुस्न' के नाम से लिखा गया था परन्तु इसका प्रकाशन पहले हिन्दी में सन् 1918 में हुआ । इस उपन्यास में प्रेमचन्द की बहुमुखी सामाजिक दृष्टि का सर्वप्रथम परिचय मिलता है । यह भारतेन्दु युग से चली आती हुई वैचारिक समस्याओं दहेज–प्रथा, अनमेल–विवाह, वेश्यावृत्ति आदि का प्रथम रचनात्मक रुपायन है । वस्तुतः यह आर्य समाज की सुधारवादी संरचना के समानान्तर साहित्यिक संरचना थी । प्रेमचन्द पूर्व के हिन्दी उपन्यासों में भी वेश्यावृत्ति का उल्लेख है जिसके प्रति पाठकों में घृणा का भाव जागृत किया गया है । प्रेमचन्द ने वेश्यावृत्ति को नहीं वेश्या जीवन को अपना विषय बनाया है । प्रेमचन्द ने उनके साथ अपनी सहानुभूति ही नहीं दिखाई है, बल्कि उन तथ्यों का भी पर्दाफाश किया है, जो मध्यवर्गीय बहु–बेटियों पर नहीं स्वयं समाज पर है (रस्तोगी : 2008 : 75) । यह एक सामाजिक उपन्यास है । इसमें भारतीय नारी के एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें वेश्याओं की समस्या का चित्रण करके उनके सुधार के उपाय भी बतलाए है । इस उपन्यास में सुमन प्रमुख नायिका है । जिसके द्वारा तत्कालीन वेश्याओं के जीवन पर प्रकाश डाला गया है । इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने वेश्यावृत्ति, अनमेल-विवाह तथा भारतीय नारी की पराधीनता आदि पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है । प्रेमचन्द ने 'सुमन' के माध्यम से तत्कालीन समाज में हो रही नारी की दयनीय स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया है । इसमें

प्रेमचन्द ने सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ते हुए वर्तमान समाज में नारी की पराधीतना, पतिता नारी के प्रति समाज का अमानुषीय वर्ताव आदि का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है । साथ ही साथ नारी को वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश करने वाली सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर भी विचार किया है ।

प्रेमचन्द के इस उपन्यास में उनके नारी के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण का परिचय मिलता है । समाज की नज़र में नीच माने जाने वाले कर्म को करने वाली वेश्या नारियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने की वे अपेक्षा रखते हैं । साथ ही नारी के वेश्या बनने के लिए विविध कारणों पर प्रकाश डालते हुए उसके निवारण को भी प्रस्तुत करते हैं । आखिर वेश्यावृत्ति क्यों जन्म लेती है ? इस उपन्यास की नायिक सुमन किन कारणोंवश इस व्यवसाय को अपनाने के लिए तैयार होती है ? एक औरत के वेश्या बनने के पीछे समाज का कितना उत्तरदायित्व रहता है ? साथ ही वेश्या–प्रथा को दूर करने के कौन से उपाय हो सकते हैं ? आदि बातों पर भी विचार किया है । प्रेमचन्द वेश्यावृत्ति के लिए महज स्त्री को ही उत्तरदायी नहीं ठहरातें बल्कि कुसुरवार उन परिस्थितियों को ठहराते हैं, जिनकी बदौलत एक स्त्री अपनी लाचार अवस्था में इस नीच वृत्ति को अपनाने पर विवश हो जाती है ।

'सेवासदन' में प्रेमचंद ने एक भोली-भाली मासूम नारी के वेश्या बनने की प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार आज भी सुमन जैसी कई औरतें समाज में कहीं अपनी जगह न पाकर कोठों पर बैठने के लिए विवश हो जाती है । सुमन के पिता कृष्णचन्द्र एक ईमानदार पुलिस अफसर थे । उन्होंने अपने जीवन काल दौरान कभी किसी का न बुरा किया न किसी से रिश्वत ली । वह प्रगतिशील विचारधारा में विश्वास रखने वाले थे । "समाचार पत्रों में जब वह दहेज के विरोध में बड़े-बड़े लेख पढ़ते तो बहुत प्रसन्न होते । गंगाजली से कहते कि अब एक दो ही साल में यह कुरीति मिट जाती है । चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं (सेवासदन : 1996 : 5) ।" किन्तु जब उनकी बड़ी बेटी सुमन की शादी की बात आई तब उन्हें जीवन की वास्तविकता का पता चलता है कि ईमानदारी के रास्ते पर चलने वालों को कभी दु:ख और परेशानी के सिवा अन्य कुछ नहीं मिलता । जहाँ कहीं भी बेटी के लिए वर की तलाश में जाते, वहाँ दहेज की तगड़ी रकम की माँग होती और कोई सीधे मुँह उनसे बात तक करने को तैयार नहीं थे । दहेज के अभाव में न अपनी बेटी के रूप-गुण का ही महत्व रह जाता था न कुलीनता का । पैसों के आगे कन्या की सारी खामियाँ भी छिप जाती है । समाज की यह स्थिति तो

उनके विचारों के ठीक विपरीत थी । "वह शिक्षित परिवार चाहते थे । वह समझते थे कि ऐसे घरों में लेन-देन की चर्चा न होगी, पर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है (सेवासदन : 1996 : 6) ।" यहाँ शिक्षित समाज पर लेखक कठोर व्यंग्य करते हैं कि किस प्रकार शिक्षित समाज भी इन सामाजिक कुरीतियों की दलदल में बुरी तरह धँसा हुआ था । "जिस शिक्षित वर्ग से समाज के अन्य वर्ग आदर्श, स्वस्थ मान्यताओं तथा उच्च संस्कृति की माँग करते हैं, वही समाज के विभिन्न भ्रष्टाचारों का आश्रय स्थल है । केवल उस पर आधुनिकता तथा थोथी आदर्शवादिता की चमक है । अंततः समाज में फैले इस भ्रष्टाचार की प्रतिक्रिया स्वरूप कृष्णचन्द्र जैसे सच्चरित्र व्यक्ति भी कुमार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए बाध्य हो जाते हैं (जोशी : 1998 : 22) ।"

कृष्णचन्द्र अपनी ईमानदारी की वजह से ही बेटी की शादी के लिए दहेज या उचित धन नहीं जमा कर पाये थे । जिन्दगी की इस कड़वी सच्चाई से यह उनका पहला साक्षात्कार था और जीवन की इस सच्चाई के आगे उनकी ईमानदारी और आदर्शवादी ने अपना दम तोड़ दिया । अपनी इस आदत पर उन्हें पछतावा भी बहुत होता है । इसका वर्णन करते हुए प्रेमचंद लिखते है–"पश्चाताप के कड़वे फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते हैं, लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते हैं, दरोगा कृष्णचन्द्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे (सेवासदन : 1996 : 10) ।" अंततः मजबूर होकर उन्हें रिश्वत लेनी पड़ी । यहाँ लेखक यह बताना चाहते हैं कि असल में कोई व्यक्ति खुद बुरा नहीं होता, बल्कि समाज उसे अच्छा या बुरा बनाता है । समाज की परिस्थितियाँ ही उसके चरित्र निर्माण की सबसे बड़ी कारणभूत होती हैं ।

रिश्वतखोरी के मामले में कृष्णचन्द्र अनाड़ी होने के कारण पकड़े जाते हैं और उन्हें जेल जाना पड़ता है । पिता के जेल जाने के बाद सुमन के मामा ने उसके लिए योग्य वर की तलाश आरंभ की । किन्तु धन के अभाव में कहीं पर भी उचित वर न मिलने पर अंत में थक हारकर सुमन का विवाह एक कारखाने में 15 रुपये महीने नोकरी करने वाले दुहाजु वर–गजाधर प्रसाद से करा देते हैं, जो उम्र में सुमन से काफी बड़ा था । जब सुमन का विवाह हुआ तो– "गंगाजली दामाद को देखकर बहुत रोयी । उसे ऐसा दुःख हुआ, मानो किसी ने सुमन को कुएँ में डाल दिया (सेवासदन : 1996 : 19) ।" और सच में सुमन का विवाह इस दुहाजू से होते ही उसकी जिंदगी बदतर हो जाती है । सुमन का गजाधर में

उम्रगत अनमेल तो था ही, ऊपर से दोनों के स्वभाव में भी कोई मेल नहीं था । "गजाधर अंतर्मुखी था, सुमन बहिर्मुखी । वह व्यक्तित्वहीन था, किसी से मिलना-जुलना पसंद ही न करता था; घर-घुसरू था; उसके पास ऐसी कोई गुण-संपत्ति ही न थी जिसे वह दो–चार जनों को दिखा सके । इसके विपरीत सुमन सामाजिक थी । आसपास के सज्जनों से मेल-जोल बढ़ाकर, समाज में वह आदर-सत्कार प्राप्त करना चाहती थी । दरिद्रता (विद्या-बुद्धि, धन-संपत्ति, सरलता आदि में) के कारण ही गजाधर लघुता-ग्रंथि (Inferiority Complex) से पीड़ित था; लेकिन सुमन अपने रूप एवं आकर्षक व्यक्तित्व से परिचित होने के कारण, अपने को श्रेष्ठ एवं उच्चतर (Superior Complex) समझती थी । यह सब होते हुए भी वह सरल थी, भोली प्रकृति की थी, पति का डर खूब मानती थी, पर-पुरुष पर निगाहें उठाना पसंद न करती थी । परंतु रूपहीन एवं गुणहीन होने के कारण ही, शायद गजाधर शक्की स्वभाव का बन गया था । उसे संदेह खाये जाता था कि सुमन भोली अथवा पद्मसिंह के साथ साँठगाँठ कर रही है (पटेल : 1998 : 7) ।"

विवाह के बाद भी सुमन को सच्ची शिक्षा देने वाला कोई नहीं मिला । जिन औरतों के साथ उसका उठना-बैठना होता था– "वे अपने पतियों को इन्द्रिय सुख का यन्त्र समझती थीं । पति, चाहे जैसा हो, अपनी स्त्री को सुंदर आभूषणों से , उत्तम वस्त्रों से सजाये, उसे स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये । यदि उसमें वह सामर्थ्य नहीं है तो वह निखट्टू है, अपाहिज है, उसे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं था, वह आदर और प्रेम के योग्य नहीं (सेवासदन : 1996 : 21) ।" पिता के लाड़ प्यार में सुमन ने केवल भोग-विलास की ही शिक्षा पायी थी । जबकि गजाधर कृपण स्वभाव का था और आर्थिक कठिनाइयों की वजह से सुमन की सारी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हो पाती थी । अतः वह इस दुहाजू से ब्याहकर अपने आपको बड़ी अभागिनी समझती है । "उसने कभी वह धर्म-चर्चा न सुनी थी, वह धर्म-शिक्षा न पायी थी, जो मन में संतोष का बीजारोपण करती है । उसका हृदय असंतोष से व्याकुल रहने लगा (सेवासदन : 1996 : 22) ।"

अपनी भोग लालसा की रस वृत्ति के कारण वह पति से विद्रोह करती है, उसे खरी-खोटी सुनाती है । जीवन में हर प्रकार की परिस्थितियों में समझौता कर पाना सुमन के बस की बात नहीं थी क्योंकि उसकी परवरिश ही कुछ इस तरह हुई थी कि वह चाहकर भी समझौता नहीं कर सकती और इसीलिए जब पति द्वारा उसे त्याग दिया जाता है, तब

कहीं न कहीं इसी विलासिता की वृत्ति के कारण तथा परिस्थितिवश वेश्या बनने के लिए विवश हो जाती है । किन्तु जब उसे जीवन की वास्तविकता का पता चलता है, तब उसे वहाँ भी सुख की प्राप्ति नहीं होती । उसे ज्ञात होता है कि विद्रोह, असंतोष तथा सामाजिक प्रत्याघात का परिणाम अच्छा नहीं आता । वह सोचती है - "...विलास-लालसा ने मेरी यह दुर्गति की । मैं कैसी अंधी हो गयी थी, केवल इन्द्रियों के सुख-भोग के लिए अपनी आत्मा का नाश कर बैठी । मुझे कष्ट अवश्य था । मैं गहने कपड़े को तरसती थी, अच्छे भोजन को तरसती थी, प्रेम को तरसती थी । उस समय मुझे अपना जीवन दुःखमय दिखाई देता था, पर वह अवस्था भी तो मेरे पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल था और क्या ऐसी स्त्रियाँ नहीं है, जो उससे कहीं अधिक कष्ट झेलकर भी अपनी आत्मा की रक्षा करती है (सेवासदन : 1996 : 343) ?" वह अपने सौन्दर्य को ही पतन का सबसे बड़ा कारण मानती है ।

वेश्या जीवन अपनाने के बाद ही सुमन को अपनी भूल मालुम होती है । वह बार-बार अपनी भोग–लालसा तथा विलास तृष्णा को ही अपने पतन के लिए दोषी ठहराती है । वह सोचती है - "हाय ! मुझ जैसी डाइन संसार में न होगी, मैंने विलास तृष्णा की धुन में अपने कुल का सर्वनाश कर दिया, मैं अपने पिता की घातिका हूँ (सेवासदन : 1996 : 345) ।" इन बातों से इतना तो अवश्य पता चलता है कि सुमन के पतित होने के पीछे कहीं न कहीं थोड़ी बहुत मात्रा में ही सही उसकी भोग-लालसा की वृत्ति भी जिम्मेदार थी, किन्तु यह एक मात्र कारण ही उसके वेश्या बनने के लिए पर्याप्त नहीं था । उसके अलावा सबसे प्रबल कारण यदि कोई था तो वह था उसका अनमेल-विवाह, अपने पति द्वारा उसका अनादार, समाज में कहीं उसे स्थान, मान-सम्मान न मिलना, उसके जीवन निर्वाह की तथा रहने की समस्या, बुरी संगत का असर पड़ना तथा बार-बार अपनी भोली के साथ तुलना करते रहना आदि इन सब कारणों ने सुमन के पास अन्य कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा था । उसके सामने केवल दो ही रास्ते बचे थे – एक तो वह आत्महत्या करके अपना जीवन समाप्त कर लें या फिर दूसरा रास्ता यह था कि वेश्यावृत्ति को अपनाकर जीवन के सुख-वैभव का भोग करें । सुमन अपने दाम्पत्य जीवन में कभी सुख-वैभव को भोग नहीं सकी थी, उनके लिए वह सदैव तरसती ही रहती थी । अतः उसने आत्महत्या के मार्ग को छोड़कर दूसरे रास्ते – वेश्यावृत्ति को स्वीकार करना ही अधिक उचित समझा ।

प्रेमचन्द युगीन समाज में व्याप्त वैवाहिक कुरीतियों ने सुमन जैसी कई औरतों को वेश्या व्यवसाय के अग्नि कुंड में धकेल दिया था । जिनमें दहेज–प्रथा तथा अनमेल–विवाह प्रमुख है । प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' में वेश्यावृत्ति पनपने के विविध कारणों की चर्चा की है । डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में कहे तो– "प्रेमचन्द ने वेश्यवृत्ति के मूल प्रेरक सम्बन्धों को कठघरे में खड़ा कर दिया है, जहाँ से पाठकों की नज़र बचाकर भाग जाना उनके लिए संभव नहीं है । दहेज,अनमेल विवाह, पति का संदेह, घर से निकलना और वेश्या की देहरी । मानो इस विवाह प्रथा और वेश्यावृत्ति में कोई अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो कि एक होगी तो दूसरी होगी और जिस समाज में विवाह का मतलब कन्या–विक्रय हो, उससे वेश्यावृत्ति कौन उठा सका है (प्रेमचन्द और उनका युग : 1985 : 30) ?"

सुमन एक स्वाभिमानी नारी थी । अत: वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकती थी किन्तु अपने ऊपर लगाये गये झूठे चरित्र हीनता के आरोप को कतई सह नहीं सकती । इसीलिए पति के घर से निकाल दिये जाने के बाद उसे ऐसा झटका लगता है कि वह न चाहते हुए भी कोठों की रौनक बनकर बैठ जाती है । प्रेमचन्द स्वयं लिखते हैं कि – "साहसी पुरुष को कोई सहारा नहीं होता तो वह चोरी करता है, कायर पुरुष को कोई सहारा नहीं होता तो वह भीख माँगता है, लेकिन स्त्री का कोई सहारा नहीं होता तो वह लज्जाहीन हो जाती है । युवती का घर से निकलना मुँह से बात का निकलना है (सेवासदन : 1996 : 232) ।"

सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए यह अत्यंत जरूरी है कि पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे का आदर-सत्कार करें । किन्तु ज्यादातर यही देखा गया है कि पति अपने को परमेश्वर और पत्नी को उसकी दासी समझता आया है । वह स्वयं तो पत्नी की ओर से आदर व मान-सम्मान की अपेक्षा रखता है किन्तु वह स्वयं अपनी पत्नी को मान-सम्मान नहीं देता । कई बार वह घर व समाज में अपना वर्चस्व जमाने के लिए बार-बार पत्नी की बेइज्जती करता है, उसका अपमान करता है, उससे मार-पीट या गाली–गलोच भी करता है, चाहे वह दुहाजू ही क्यों न हो । ऐसी अवस्था में बार-बार पति के अत्याचारों को न सह सकने के परिणामस्वरूप व अपने खोये हुए मान-सम्मान को पुन: प्राप्त करने हेतु या कहीं अन्य जगह वह प्रेम पाने की लालसावश, जो प्रेम व आदर उसे अपने पति के घर नहीं मिला ; वेश्यालय तक पहुँच जाती है । सुमन के वेश्या बन जाने के पश्चात् जब गजाधर को अपनी गलतियों का अहसास होता है, तब अपनी करनी पर पछताता हुआ उमानाथ से

कहता है - "मैं अब उस समय की बातों को सोचता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि एक बड़े घर कि बेटी से ब्याह करने में मैंने बड़ी भूल की और इससे बड़ी भूल यह थी कि ब्याह हो जाने पर उसका उचित आदर-सम्मान नहीं किया (सेवासदन : 1996 : 163)।"

सुमन सदैव अपने पति की ओर से वह आदर और सम्मान के लिए तरसती रहती थी, जो भोलीबाई एक वेश्या होते हुए भी बड़ी आसानी से पा रही थी। किन्तु उसे अपने बूढ़े पति ने तथा समाज के अन्य लोगों ने भी उसे बिलकुल मान-सम्मान नहीं दिया। सबसे ज्यादा दुःख तो उसे तब होता है, जब स्वयं उसका पति उसे मान-सम्मान देने की अपेक्षा उस पर चरित्र–हीनता का लांछन लगाकर उसे अपमानित करके घर से बाहर निकाल देता है।

इस प्रकार सुमन का अनमेल विवाह उसके व्यक्तिगत जीवन को तहस-नहस कर देता है। दोनों की उम्र में तो अनमेल था ही, स्वभाव भी एक-दूसरे से सर्वथा विपरीत थे। अतः दोनों विपरीत स्वभाव, विपरीत प्रकृति के लोग एक-साथ कितने दिन साथ-साथ रह सकते थे ? सुमन रूपवति थी, गुणशीला थी। जबकि गजाधर कृपण, दुहाजू और अधेड़ था; ऊपर से शंकालु भी था। उसकी मानसिकता का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं – "गजाधरप्रसाद की दशा उस मनुष्य की सी थी, जो चोरों के बीच में अशर्फियों की थैली लिये बैठा हो। सुमन का वह मुखकमल जिस पर वह कभी भौंरे की भाँति मँड़राया करता था, अब उसकी आँखों में जलती हुई आग के समान था। वह उससे दूर–दूर रहता, उसे भय था कि वह मुझे जला न दें (सेवासदन : 1996 : 30)।"

भारतीय समाज में स्त्री की आर्थिक पराधीनता का फल है वेश्यावृत्ति। पति द्वारा छोड़ दिये जाने के बाद सुमन के सामने सबसे बड़ी समस्या उसके रोटी, कपड़ा और मकान की थी। अगर सुमन को कहीं सहारा, रहने को घर, खाने को दो जून रोटी और पहनने को कपड़ों की व्यवस्था हो जाती तो शायद वह इस व्यवसाय को कभी न अपनाती। इसीलिए जब वह गृह त्याग करती है, तब सीधे ही वेश्यालय न जाकर पद्मसिंह के यहाँ जाती है। लेकिन वहाँ से भी निकाल दिये जाने के बाद अन्यत्र कहीं कोई रास्ता नजर न आने पर थक हारकर इस व्यवसाय को अपना लेती है।

प्रेमचन्द ने इस उपन्यास के जरिये समाज में पनपने वाली वेश्यावृत्ति के मूल कारणों की चर्चा की है । साथ ही अपनी ओर से वेश्या सुधार के उपाय भी प्रस्तुत किये है । किसी भी औरत के वेश्या बनने का सबसे प्रमुख कारण यदि कोई होता है, तो वह है तत्कालीन समाज व्यवस्था । 'सामान्यत: कोई भी स्त्री अपनी मर्जी से वेश्या नहीं बनती । सदियों से पुरुष ने स्त्री को वासना तृप्ति का साधन माना । पुरुष वासना तृप्ति उचित मार्ग से न होने पर पथभ्रष्ट हो जाता है । इसी पथभ्रष्टता का नाम वेश्या व्यवसाय है । स्त्री अपने शरीर का बाजार इसलिए सजाये बैठी है कि उसे खरीदने वाले सौदागर अँधेरी गलियों में मौजूद हैं । विविध छल कपट से पुरुष ने ही इस बाजार को बनाये रखा है ।' इस निर्दय समाज ही औरत को वेश्या बनने पर मजबूर करता है ।

प्रेमचन्द सच्चे अर्थों में मानवतावादी लेखक थे । उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों से बहुत कुछ सीखा था । वे तत्कालीन समाज व्यवस्था में प्रचलित वेश्यावृत्ति और वेश्या जीवन से भली–भाँति परिचित थे । उनकी दृष्टि में वेश्यावृत्ति समाज के माथे पर लगा हुआ सबसे बड़ा कलंक है; किन्तु फिर भी वे वेश्या औरतों के विरोधी नहीं थे, बल्कि उनकी वेश्यावृत्ति के विरोधी थे । गाँधीजी की भाँति उनका भी यही मानना था कि 'पाप से घृणा करो पापियों से नहीं' । अत: प्रेमचन्द वेश्याओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार रखने की आशा करते हैं । लेकिन अक्सर यह देखा गया है कि एक बार जो नारी अपनी विवशता में इस व्यवसाय को अपना लेती है, वह दुबारा सभ्य समाज में रहने लायक नहीं समझी जाती । समाज हमेशा उसे घृणित नजरों से ही देखता है ।

वेश्या जीवन की वास्तविकता तो यही है कि वह समाज में घृणित नज़रों से देखी जाती है; किन्तु उसके पनपने के पीछे भी इसी कथित समाज का सबसे बड़ा हाथ होता है । डॉ. रक्षा पुरी लिखती है – "किसी भी समाज के लिए यह अत्यंत लज्जाजनक है कि नारी पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित होकर जीवन–निर्वाह के लिए शरीर का व्यवसाय करें । वेश्यावृत्ति हमारे सामाजिक जीवन को विषाक्त बना देती है । वेश्यागामी पुरुष वेश्या पर तो अपना वर्चस्व लुटाने को तैयार रहता है लेकिन अपनी विवाहिता पत्नी का तिरस्कार करता है । प्रेमचन्द ने अनुभव किया था कि इस घृणित व्यवसाय के उन्मूलन के लिए इसके प्रति घृणा उत्पन्न करनी होगी (प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज : 2006 : 147) ।"

समग्रतः कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' उपन्यास में 'सुमन' के जरिये वेश्यावृत्ति के मूल तक जाने की चेष्टा की है । लेकिन इस उपन्यास में उन्होंने जितनी बखूबी से वेश्यावृत्ति पनपने के कारणों की चर्चा की है, उतने ठोस तरीके से इसका समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाये है । हालाँकि उन्होंने विट्ठलदास और पद्मसिंह के माध्यम से सुधार का आंदोलन अवश्य चलाया है और अंत में इसके समाधानार्थ 'सेवाश्रम' या 'सेवासदन' का विकल्प भी प्रस्तुत किया है, लेकिन यह विकल्प भी परमानेन्ट न लगकर टेम्पररी ही लगता है, क्योंकि स्वयं सुमन को आश्रम में रह रही वेश्या-बालिकाओं के भविष्य को लेकर गंभीर आशंकाएँ हैं । इसका सबसे बड़ा कारण यही था कि जिन परिस्थितियों की वजह से सुमन इस व्यवसाय की ओर गई थी, वे तो वैसी की वैसी ही बनी हुई थी । अतः जब तक समाज की मनोवृत्ति नहीं बदलेगी, स्त्री के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्ति नहीं हो जाता ; तब तक वह तरह-तरह के शोषण एवं उत्पीड़न का शिकार होती रहेगी ।

2. निर्मला में चित्रित नारी संवेदना

कहा जाता है कि एक औरत ही दूसरी औरत की पीड़ा को पुरुष से कहीं अधिक अच्छी तरह से समझ सकती है । किन्तु जब प्रेमचन्द के 'निर्मला' उपन्यास का अध्ययन करते हैं , तो यह बात झूठी सिद्ध होती हुई नजर आती है । क्योंकि यहाँ पर एक नारी ही दूसरी नारी की दुर्दशा का सबसे बड़ा कारण बनती है । एक नारी ही दूसरी नारी की भावनाओं को, उसकी आकांक्षाओं, उसकी अभिलाषाओं को अच्छी तरह से समझ नहीं सकती और उसको जीते जी नर्क से भी बदतर जिन्दगी जीने के लिए छोड़ देती है । इस उपन्यास की नायिका निर्मला का विवाह उसकी माता कल्याणी द्वारा एक ऐसे दुहाजू बूढ़े वर मुंशी तोताराम के साथ कर दिया जाता है, जो उसके पिता की उम्र का था तथा जिसकी तीन संताने पहले से ही मौजूद थीं । निर्मला अपने इस अनमेल विवाह की चक्की में कुछ इस तरह से पिसती रहती है कि वह जीवन भर कभी एक चैन की साँस तक नहीं ले पाती । उसके जीवन में न तो कोई इच्छा ही शेष रहती है न तो कोई आकांक्षा । उसने अपनी सारी इच्छाओं और आकांक्षाओं को अपने घर-परिवार के लिए कुरबान कर दी थी । वह विवाहिता होकर भी एक अविवाहिता सी जिंदगी ही जीती है । उसकी जीजीविषा ही

अब खत्म हो गई थी । उसका जीवन मौत से भी बदतर बन जाता है । निर्मला को जीते जी इस नर्क मे झोंकने वाला और कोई नहीं बल्कि उसकी स्वयं की माँ कल्याणी ही थी ।

एक औरत संसार में यदि सबसे अधिक किसी को प्यार करती है, तो वह है अपनी संतान को; क्योंकि एक संतान ही औरत को, उसकी गरिमा को बढ़ाकर उसे एक सामान्य नारी से ऊपर उठाकर उसे मातृत्व प्रदान करके 'माँ' का दरजा प्रदान करती है । अत: प्रत्येक माँ अपनी संतान को प्राणों से भी अधिक चाहती है । किन्तु 'निर्मला' उपन्यास में तो एक माँ ही अपनी संतान (निर्मला) का अनमेल विवाह करा करके उसे जीते जी नर्क के कुएँ में ढकेलती नजर आती है । यह बड़े ही आश्चर्य की बात है । इसका क्या कारण हो सकता है ? वह ऐसी कौन सी परिस्थिति पैदा हो चुकी थी, जिसके चलते एक औरत को दूसरी औरत की बली देनी पड़ी ? एक माँ को ही अपनी संतान की जिन्दगी कुरबान कर देनी पड़ी । इन सारे प्रश्नों के उत्तर जब निर्मला उपन्यास का अध्ययन करते हैं, तो अपने आप ही मिल जाते हैं ।

वकील उदयभानु की पत्नी और निर्मला की माँ - कल्याणी मध्यवर्गीय भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है । यहाँ उसे प्रेमचन्द ने एक असहाय नारी के रूप में चित्रित किया है, जो अपने आर्थिक अभावों के बीच भी अपनी संतानों की सुख सुविधाओं का (अपने बेटों की सुख-सुविधाओं का अपनी बेटियों की सुख-सुविधाओं का नहीं) बराबर ध्यान रखती है । वह निर्मला के विवाह में जरूरत से ज्यादा खर्च करना नहीं चाहती । ऐसा करके वह अपने बेटों के मार्ग में काँटे बोना नहीं चाहती । कुछ ही साल बाद उनकी दूसरी बेटी कृष्णा का भी विवाह करना था और वह अपने बेटों के लिए भी कुछ रुपयें बचाकर रखना चाहती थी ।

निर्मला के विवाह के मामले में वह किसी भी प्रकार के आडंबर या दिखावे से बचना चाहती थी । वह अपनी हैसियत के मुताबिक ही खर्च करना चाहती है । वह कहती है – "...कह तो रही हूं पक्का इरादा कर लो कि पांच हजार से अधिक खर्च न करुंगा घर में तो टका है नहीं , कर्ज ही का भरोसा ठहरा, तो इतना कर्ज क्यों लें कि जिन्दगी में अदा न हो । आखिर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए (निर्मला : 1996 : 9)।" इस प्रकार कल्याणी एक चतुर, दूरदर्शी एवं व्यवहारकुशल नारी के रूप में ऊभरकर सामने आती है । वह अपने तथा अपने बच्चों पर किसी भी प्रकार के अन्याय को सहन

करने के पक्ष में नहीं थी । परंतु इस पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के चाहे कितने ही उमदा और अच्छे विचार या परामर्श क्यों न हो, उसका कोई मूल्य नहीं । उल्टे कल्याणी का पति उसके इस सद्परामर्श को महत्व ही न देकर उसे बहुत सी जली-कटी बातें सुनाते हैं, जिससे कल्याणी के हृदय को ठेस पहुँचती है और वह अपना पति तथा घर सब कुछ छोड़ देने को तैयार हो जाती है । वह कहती है –"तुमसे दुनिया की कोई भी बात कही जाती है, तो जहर उगलने लगते हो । इसलिए न कि जानते हो, इसे कहीं ठिकाना नहीं है, मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है; या और कुछ ! जहाँ कोई बात कही, बस सिर हो गये, मानो मैं घर की लौंड़ी हूँ, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है । जितना ही मैं दबती हूँ, तुम और भी दबाते हो । मुफ्तखोर माल उड़ाये, कोई मुँह न खोले, शराब कबाब में रुपये लुटे, कोई जबान न हिलाये । वे सारे काँटे मेरे बच्चों ही के सिर तो बोये जा रहे हैं । ...ऐसी स्त्रियाँ भी और होंगी जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती हैं (निर्मला : 1996 : 10) ।" वह ऐसे घर में रहना तक पसंद नहीं करती, जिसमें उसकी कोई एक न सुनता हो । वह कहती है–"तो आप अपना घर सँभालिये ! ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहाँ मेरी कोई पूछ नहीं । घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी । इससे जी भर भी कम नहीं । अगर तुम अपने मन के राजा हो तो मैं भी अपने मन की रानी हूँ । तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहें मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है (निर्मला : 1996 : 10) ।" वह इतनी स्वाभिमनी है कि पति का घर छोड़ने के बाद अपना जीवन निर्वाह अकेले, किसी के साथ के बिना ही कर लेना अच्छी तरह से जानती थी । इसीलिए तो पति के यह कहने पर कि –"मैके का घमण्ड होगा ।" इसके प्रत्युत्तर में लाल–लाल नेत्रों से पति की ओर देखकर कहती है –"मैके वाले मेरे तकदीर के साथी नहीं है और न मैं इतनी नीच हूँ कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूँ । ... ईश्वर की सृष्टि में असंख्य प्राणियों के लिए जगह है, क्या मेरे ही लिए जगह नहीं है (निर्मला : 1996 : 11) ।" कल्याणी घर छोड़कर चले जाने का निश्चय तो करती है, किन्तु उसकी ममता उसे इसकी इजाजत नहीं देता । उसका मातृप्रेम उसे जाने से रोक लेता है ।

वैसे देखा जाये तो यह कितना बड़ा त्याग है । सचमुच एक माँ ही अपने बच्चों के लिए अपने मान-अपमान की परवाह नहीं करती । कल्याणी के इस व्यवहार से उसके त्याग एवं बलिदान की भावना का पता चलता है । सच पूछा जाय तो एक माता ही अपने बच्चों के लिए संसार में किसी भी प्रकार का सबसे बड़ा दुःख भी झेलने को तैयार हो जाती है ।

किन्तु वास्तव में कल्याणी का मातृहृदय इतना भी बड़ा व्यापक नज़र नहीं आता । वह प्राचीन समय से चली आ रही पितृसत्तात्मक व्यवस्था से सर्वथा मुक्त नहीं थी, जिसमें बेटियों से कहीं अधिक महत्व बेटों को दिया जाता था । उसका मातृप्रेम पक्षपाती था । उसने अपनी ममता को बच्चों में बाँट रखा था, लेकिन यह बंटवारा भी समान रूप से नहीं था, उसकी ममता भी स्वार्थी प्रतीत होती है ।

कल्याणी का यह पक्षपाती रूख इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के ही कारण था; क्योंकि बेटा ही बुढ़ापे का सहारा होता है, वह कुलदीपक माना जाता है तथा वंशवृद्धि बेटे से ही संभव होती है, जबकि बेटी 'पराया धन' होने के कारण एक दिन ब्याह कर अपने घर चली जायेगी । ये मान्यताएँ उसके मन में घर कर गई थी । अतः जब कल्याणी घर छोड़ने का निश्चय करती है, तब उसे केवल अपने बेटों का ही खयाल आता है । उनके लिए सबकुछ सहने को तैयार हो जाती है किन्तु जब निर्मला की शादी की बात आती है, तब वह एक–एक पैसा बचाकर रखना चाहती है, जो उसके बेटों के काम में आ सकते थे । शायद इसीलिए उदयभानु के मरने के बाद केवल कुछ रुपयों के लिए अपनी बेटी निर्मला का विवाह उसके योग्य वर से न करके एक दुहाजू, जो कि निर्मला की पिता के उम्र का था, उससे कर देती है । इससे स्पष्ट पता चलता है कि कल्याणी का अपने पति के साथ किया गया विद्रोह भी अपनी बेटियों के लिए नहीं बेटों के लिए ही था ।

प्रेमचन्द युग में दहेज की कुप्रथा का दुषण अपनी चरम सीमा पर था । बिना दहेज के किसी लड़की की शादी अच्छे घरों में होना तो जैसे संभव ही नहीं था । धन के अभाव में लड़की के रूप-गुण की कोई कीमत नहीं रह जाती थी । अतः गरीब माँ-बाप की बेटियाँ या तो कँवारी रह जाती थी या तो किसी कुपात्र के गले मढ़ दी जाती थी । इस युग में पढ़े-लिखे लोग भी दहेज के द्वारा कन्या पक्ष की ओर से अधिक से अधिक धन ऐंठने के चक्कर में लगे रहते थे । फलतः समाज में इस वैवाहिक व्यवस्था की विकृतियाँ उभरकर सामने आई और अनमेल विवाह, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह आदि के रूप में विवाह के विविध विकृत रूप समाज में प्रचलित हुए । इस वैवाहिक विकृतियों ने यथासंभव सामाजिक संगठन को कमजोर तथा जर्जरित ही बनाया । विशेषकर नारी वर्ग तो इन विकृतियों का सबसे अधिक शिकार बना । सभी जगह नारी ही कमजोर पड़ती थी, अतः हर तरह के अत्याचार अंततः उसी से सबंधित किए जाते थे (तिवारी : 2005 : 108) ।

निर्मला इस उपन्यास की प्रमुख पात्र है । उसका संपूर्ण जीवन संघर्षों से भरा हुआ है । उपन्यास की शुरूआत में ही उसकी वय: संधी की अवस्था को दर्शाते हुए लेखक ने उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन बड़ी ही कुशलता से किया है । निर्मला जो स्वप्न देखती है, वह उसके भावी जीवन का संकेत बनकर उभरकर आता है ।

निर्मला हमेशा अपने एक आदर्श भारतीय नारी होने का आवरण ओढ़कर रखती है । वह चाहते हुए भी भारतीय पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में हो रही नारी की दुदर्शा के लिए विद्रोह नहीं कर सकती । उसके लिए तो उसके माता-पिता जो वर चुनते हैं, वहीं योग्य मान लिया जाता है । उसका खुद का निर्णय इस मामले में कोई महत्व नहीं रखता । उसके घरवाले तो जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी उसे विदा करके अपने सिर के बोझ से हल्का होना चाहते थे ।

निर्मला के असफल दांपत्य जीवन का सबसे बड़ा कारण उसका अनमेल विवाह ही था । निर्मला का विवाह आयु एवं स्वभाव दोनों दृष्टि से अनमेल होने के कारण कभी उसके जीवन में सुख का सूरज नहीं ला सका । निर्मला तोताराम को प्रेम की नहीं, बल्कि दया और सम्मान की वस्तु समझती है, उन्हें देखकर कभी उसके मन में प्रेमभाव उत्पन्न नहीं हुआ । वह एक आदर्श भारतीय नारी की तरह अपने पति के लिए सब कुछ कर सकती है, किन्तु वो नहीं कर सकती, जो उसके बस में न था । वह खुद कहती है –"मैं इनकी सेवा कर सकती हूँ, सम्मान कर सकती हूँ, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूँ, लेकिन वह नहीं कर सकती, जो मेरे किये नहीं हो सकता । अवस्था का भेद मिटाना मेरे वश की बात नहीं (अग्रवाल : 1999 : 85) ।" और इसी अवस्था भेद ने कभी भी निर्मला को दाम्पत्य सुख नहीं पाने दिया । निर्मला चाहकर भी पूर्ण रूप से तोताराम को अपना ही न सकी ।

इन दोनों पति-पत्नी के बीच की दूरी के कारण को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है – दोनों मन मिलाकर चलने की पूरी कोशिश करते थे । निर्मला पति की सेवा में कोई कसर न रखती थी, और मुंशी तोताराम निर्मला को प्राणों से ज्यादा प्रेम करते थे । परंतु ट्रेजेड़ी यह भी थी कि तोताराम को सेवा नहीं प्रेम चाहिये था, विलास की लालसा थी; और निर्मला को बूढ़े पति का प्रेमोन्माद नहीं, विश्वास और आश्रय चाहिए था । एक जो दूसरे से माँगता था (आशा करता था) , दूसरे के लिए उसे दे सकना काबू से बाहर था ।

यही तो मुश्किल थी, लाचारी थी, ट्रेजेड़ी थी । दोनों ओर से समस्त कोशिश होने पर भी आयुगत अनमेलपन, मनचाहा मेल उपजने ही न देता था । लाख कोशिश कीजिये, तन–बदन पर सैकड़ों लेप चुपड़िये, दुनियाभर की समझदारी और सहिष्णुता ले आइये, तो भी बूढ़े और किशोरी के मन एक दूसरे कि विरुद्ध दिशा में ही चलेंगे; दोनों के विचारों , इच्छाओं , भावनाओं और लालसाओं का भेद बड़े-से-बड़ा मनोवैज्ञानिक भी नहीं मिटा सकता । पुरानी पीढ़ी का अंतर स्वाभाविक है, सार्वदेशिक है और सार्वकालिक है ।'

निर्मला अपने आपको कर्तव्य की अग्नि में होम कर देती है, लेकिन फिर भी वह एक नवयौवना थी, खूबसूरत थी, अतः उसके मन में भी अदम्य काम-वासनाएँ उठती थी; किन्तु उसे तृप्त करने वाला वहाँ कोई नहीं था । एक पति है, किन्तु वह भी उसके योग्य न था । निर्मला का सौतेला लड़का मंसाराम जो उसका हम उम्र था, वह उससे अपना जी बहलाना चाहती थी । इसीलिए वह उससे पढ़ने का स्वाँग भी रचाती है । उससे मिलना-जुलना, बातें करना उसे अच्छा लगता है । इससे उसकी अतृप्त वासनाओं को तृप्ति मिलती थी ।

खैर, जो भी हो, लेकिन एक बात तो तय है कि निर्मला अपने प्राचीनतम आदर्शों की रक्षा के लिए ही न तो मंसाराम से खुलकर हँस-बोल या मिल-जुल सकती थी, और न ही डॉ. सिन्हा के प्रेम-प्रस्ताव को स्वीकार कर पाती है; हालाँकि खुद वह अपने निजी दाम्पत्य जीवन में सुखी नहीं थी । इस प्रकार के अनमेल विवाह के कारण बहुत सी औरतें या तो पतित होने के मार्ग पर चली जाती हैं, या आत्महत्या करके अपना जीवन समाप्त कर लेती है । बहुत सी नारियों को ऐसे मौकों पर बहलाकर उनका फायदा भी उठाया जाता है । इस प्रकार के अनमेल विवाह के परिणामस्वरूप होने वाले अनिष्टों के बारे में संकेत करते हुए डॉ. बिन्दु अग्रवाल लिखती है- "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनमेल विवाह का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यही होता है कि व्यक्ति की वासनाओं की तृप्ति स्वाभाविक रूप में न होने के कारण उसका मन चाहे जिस ओर झुक जाता है । कर्तव्य का ध्यान छूट जाने और संयम का बाँध टूट जाने पर कभी-कभी बड़ा अनर्थ भी होता है (हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण : 1999 : 87) ।"

'सेवासदन' की सुमन और 'निर्मला' की निर्मला दोनों का अनमेल विवाह था । दोनों अपने दाम्पत्य जीवन से खुश नहीं थी; किन्तु जितनी हिम्मत सुमन दिखाती है, अन्याय के

विरुद्ध लड़ने और विद्रोह करने की क्षमता जितनी सुमन में है, उतनी निर्मला में नहीं है । निर्मला परंपरागत संस्कारों से कुछ इस तरह दबी हुई थी कि वह चाहकर भी उससे बाहर नहीं निकल सकती और इसी वजह से उसकी जिन्दगी और भी अधिक कष्टमय हो जाती है ।

जीवन की अंतिम क्षणों में निर्मला बिलकुल अकेली ही रह जाती है । उसका पति भी उसका साथ छोड़कर चला जाता है । केवल रूक्मिणी ही उसके पास रहती है । अब उसे अपनी बेटी की ही चिन्ता अधिक थी । वह यह कभी नहीं चाहती थी कि उसे जीवन भर जिन यातनाओं को अपनी माँ की वजह से सहना पड़ा; उसे अपनी वजह से उसकी बेटी को सहना पड़े । इसीलिए वह रूक्मिणी से कहती है -"बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूँ । अगर जीती-जागती रहें तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजियेगा । मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी, केवल जन्म देने भर की अपराधिनी हूँ । चाहे क्वाँरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालियेगा, पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा, इतनी ही आपसे मेरी विनय है (निर्मला : 1996 : 45)।"

इस प्रकार निर्मला के इन शब्दों से स्पष्ट पता चलता है कि निर्मला अपने जीवन में अंत तक एक प्रकार की घुटन सी महसूस करती रहती है । वह मरते दम तक अपनी सारी इच्छाओं को दबाकर रखती है । जीवन की अंतिम क्षणों में भी वह चैन की एक साँस तक नहीं ले पाती । जीवनभर उसे संघर्ष करना पड़ा, आखिरकर मर कर ही उसे इन झंझटों से मुक्ति मिलती है ।

3. वरदान में चित्रित नारी संवेदना

'सेवासदन' के पश्चात् प्रेमचन्द लिखित 'वरदान' उपन्यास में ग्रामीण जीवन की अभावग्रस्त स्थितियों को तथा उनकी विडम्बनाओं को दर्शाया गया है । यह उपन्याास भी हिन्दी में प्रकाशित होने से पूर्व उर्दू में लिखा गया था । इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने अनमेल विवाह की समस्या को उठाकर उसका समाधान आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास की कथा विफल प्रेम की कहानी है – जिसमें प्रेमचन्द ने नायक के माध्यम से समाज सेवा एवं राष्ट्र गौरव की भावना को भी बल प्रदान किया है (रत्नाकर : 1979 : 44) । प्रताप इस उपन्यास का नायक है, जो कि एक गरीब घर का लड़का है । विरजन

और प्रताप दोनों बचपन के साथी है । साथ–साथ रहने के कारण दोनों में गहरी दोस्ती हो जाती है और यह दोस्ती आगे चलकर प्रेम में परिणत हो जाती है ।

प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज में नारी और पुरुष के सम्बन्धों में तनाव की स्थिति चल रही थी, जिसके लिए परंपरागत जीवन मूल्यों एवं सामाजिक आदर्शों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है । नैतिकता और आदर्श के नाम पर समय–समय पर भारतीय नारी पर जो अनुज्ञाएँ आरोपित की गयीं वे कालान्तर में उसके लिए सामाजिक अवरोध की बेड़ियाँ बन गयीं । इन श्रृंखलाओं में जकड़ी हुई नारी का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा । नारी का जीवन जैसे एक अभिशाप ही बनकर रह गया । नारी की स्थिति सबसे अधिक दयनीय तब बन जाती थी, जब उसे उसके अनुरुप या इच्छित जीवन साथी नहीं मिल पाता । इससे उसका व्यक्तिगत व दाम्पत्य जीवन तहस-नहस हो जाता था और अनमेल विवाह जैसी समस्या और भी अधिक भयंकर बनती नज़र आती थी । प्रेमचन्द द्वारा रचित 'वरदान' उपन्यास में इसी प्रकार के स्वभावगत अनमेल विवाह तथा अपने अनुरुप या इच्छित जीवनसाथी न मिल पाने की वजह से एक नारी के जीवन में उत्पन्न अनेक समस्याओं से भरे दु:खमय दाम्पत्य जीवन पर प्रकाश डाला गया है ।

'वरदान' उपन्यास की प्रमुख नायिका है - वृजरानी या विरजन । उसके जीवन की सबसे बड़ी करुणता यह है कि एक तो उसका बाल-विवाह हुआ था और जिससे उसका विवाह हुआ था, वह लड़का भी उसकी इच्छानुसार नहीं था और न ही उसकी बराबरी का था । विरजन और कमलाचरण का विवाह तब कर दिया जाता है, जब विरजन महज तेरह साल की और कमलाचरण की उम्र पन्द्रह साल की थी जिसे एकदम कच्ची उम्र मानी जा सकती है । और यह विवाह भी उनकी (विरजन की) पसन्द से नहीं बल्कि उनके माँ-बाप की इच्छा व पसन्द से होता है । ऐसी कच्ची उम्र में शादी हो जाने के कारण कई बार बच्चों की पढ़ाई एवं उनके स्वास्थ्य तथा उनके संस्कार–सिंचन में भी बहुत सी समस्याएँ उपस्थित हो जाती है (रत्नाकर : 1979 : 50) ।

इस उपन्यास में नारी के अतृप्त और विफल प्रेम की कथा को प्रस्तुत किया गया है । किस प्रकार सामाजिक मर्यादाओं तथा बन्धनों के रहते एक नारी अपने प्रेम को न तो पा सकती है और न ही उसे उसके अनुरुप जीवन साथी ही मिल पाता है । परिणामस्वरूप उसका सारा जीवन अनेक प्रकार के समझौंतों से गुजरकर यातनापूर्ण ही

व्यतीत होता है । उसे अपनी इच्छाओं और अभिलाषाओं को सामाजिक बंधनों की अग्नि में ही होम कर देना पड़ता है ।

विरजन बचपन से ही अपने साथी मित्र प्रताप को चाहती थी । प्रताप भी उसे उतना ही चाहता था । दोनों साथ में ही पले–बड़े थे । खेल-खेल में दोनों एक दूसरे से कुछ इस तरह रागात्मक रूप से जुड़ गए कि किसी को पता ही न चला । विरजन उसी को लेकर भविष्य के मधुर स्वप्न देखने लगी थी । इस बात का पता घर के बड़ो को भी था । एक दिन जब विरजन सुवामा के घर पर जाती है, तब उसकी ध्यान मग्न मुद्रा को देखकर वह ताड़ जाती है कि विरजन क्या सोच रही थी । वह उससे पूछती भी है । तब विरजन अपने मन की बात को उसके सम्मुख यों प्रस्तुत करती है -"सोचती थी कि जब प्रताप से मेरा विवाह हो जायेगा, तब बड़े आनन्द से रहूँगी (वरदान : 1996 : 84) ।" लेकिन सुवामा विरजन की बात को महज एक खेल या बचपना समझकर उसे टाल देती है । वह उसे सझाते हुए कहती है -"बेटी, वह तो तेरा भाई है । तब विरजन उससे रूठ जाती है और कुछ गुस्से भरे स्वर में कहती है -"हाँ, भाई है । मैं जान गई । तुम मुझे बहू न बनाओगी ।" विरजन की इन बातों से वह प्रताप के बारे में क्या सोचती थी इसका स्पष्ट पता चलता है । दूसरी तरफ प्रताप भी विरजन को उतना ही चाहता था पर कभी अपने मन की बात को होठों पर आने नहीं दिया ।

विरजन की शादी अन्यत्र हो जाने के कारण प्रताप का मन एकदम से टूट जाता है । वह मन ही मन उससे इतना प्यार करता था कि उसके बगैर वह रह ही नहीं सकता । सोते–जगते बस उसी के बारे में सोचता रहता है । लेकिन उसे इस बात का एहसास हो जाता है कि विरजन हमेशा के लिए उसे छोड़कर चली जायेगी, तब वह उससे दूर रहने की लगातार कोशिश करता रहता है । घर के अन्य सदस्य भी उसके इस रूखे व्यवहार का कारण बड़ी अच्छी तरह से समझते थे, परंतु किसी ने भी उसके या विरजन के हित में कोई कार्य न किया ।

प्रताप और विरजन का प्रेम वैवाहिक बंधन में नहीं बँध पाया । इसके प्रमुख दो कारण थे । एक तो दोनों परिवारों में आर्थिक दृष्टि से असमानताएँ मौजूद थीं और दूसरा महत्वपूर्ण कारण था सामाजिक व्यवस्था और तत्कालीन समाज के लोगों की खोखली मानसिकता । जिसके तहत यदि दो पड़ोसी परिवार के बच्चें साथ में खेलकर बड़े हुए हो

तो वे भाई–बहन तो बन सकते हैं, परन्तु कभी पति-पत्नी नहीं बन सकते । ऐसा करना उस युग के खिलाफ था । समाज की इस खोखली मानसिकता को प्रस्तुत करते हुए शम्भुनाथजी लिखते हैं - "भारतीय समाज में विवाह पूर्व प्रेम को आज भी मान्यता नहीं मिली है । किशोर प्रेम को भावुकता माना जाता है, खास तौर पर लड़के–लड़कियाँ जब पास पड़ोस में ऐसा करते हों । भाई और बहन के संबध के अलावा अन्य किसी धरातल पर इनका मिलना-जुलना सामान्यत: सम्भव नहीं होता । किशोर वय के लड़के-लड़कियों में जब यौन भावनाएँ जागृत होने लगती हैं और इन्हें सही दिशा नहीं मिलती , उल्टे इन भावनाओं पर सामाजिक आघात पहुँचता है, तब प्रेमियों के जीवन में दर्द का एक दौड़ आता है । इस दर्द का भावी जीवन पर कभी-कभी प्रतिकूल असर भी पड़ता है (प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज : 2006 : 116) ।" प्रताप और वृजरानी की विफल प्रेमकहानी में समाज की यही खोखली मानसिकता जिम्मेदार थी, जो उन्हें एक नहीं होने देती ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने किशोरावस्था से पूर्व बाल्यावस्था तथा वैवाहिक जीवन से पूर्व के प्रेम सम्बन्ध को प्रस्तुत किया है । साथ ही इसका एक नारी के वैवाहिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका भी चित्रण किया है । 'बाल्यावस्था के बाद किशोरावस्था में प्रवेश करने पर नारी और पुरुष का एक दूसरे की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है । बाल्यावस्था का स्नेह संबंध प्राय: आगे चलकर प्रेम में परिणत हो जाता है । ऐसी स्थिति में किसी दूसरे पुरुष से विवाह होने पर नारी के वैवाहिक जीवन में अनेक असंगतियाँ आ जाती है (पुरी : 2006 : 118) ।' विरजन की कहानी में भी कुछ ऐसा ही होता है । प्रताप और विरजन दोनों बचपन से भाई–बहन की भाँति साथ-साथ रहे तो अवश्य थे किन्तु उनका यह साथ एक भावनात्मक स्तर पर पहुँचकर प्रेम के अटूट बंधन में परिणत हो जाता है । लेकिन उनका यह प्रेम संबंध में नहीं बँध पाता । उनके माता-पिता ही उनके जीवन में काँटे बोते नजर आते हैं । ऐसा लगता है कि वे अपने हाथों से ही अपने बच्चों की खुशियों का गला घोंट देते हैं । उनके सारे अरमानों पर पानी फेरकर उनके सपनों को तहस–नहस कर देते हैं । और जिस युवक से अपनी बेटी का विवाह कराने जाते हैं, वहाँ यह नहीं देखते कि क्या सच में लड़का–लड़की के अनुरुप है भी या नहीं ? क्या उम्र भर मेरी बेटी उसके साथ सुख-चैन से रह सकेगी या नहीं ? लेकिन इनमें से एक भी पहलू पर विरजन के माता-पिता तनिक भी सोच विचार नहीं करते । केवल परिवार की हैसियत

को देखकर ही अपने मन को मनाकर बेटी को उसके हवाले करने का निश्चय कर लेते हैं। बेटी के जीवन से सम्बन्धित इतना महत्वपूर्ण फैसला लेने से पूर्व वे एक बार भी यह जानने की कोशिश नहीं करते कि इस विषय में खुद की बेटी का मन क्या कहता है ?

कमलाचरण से विरजन के अनमेल विवाह का कारण माता-पिता की लापरवाही, असावधानी, प्रमाद और आलस्य ही था। प्रेमचन्द जिस समय की बात करते हैं, उसमें माता-पिता लड़की की इच्छा-अनिच्छा, पसंदगी–नापसंदगी का विचार नहीं किया करते थे, सिर्फ अपनी पसंदगी या मनमानी ही चलाते थे। जहाँ उनका मन चाहे, वहाँ बेटी को ब्याह देते थे। ऐसी कुप्रथा जिस समाज में होगी वहाँ अनमेल विवाह तो होगी ही। उस समय कन्या के माता–पिता लड़के के संस्कार, शिक्षा, आचरण, स्वभाव, प्रकृति व्यवहार आदि पर ध्यान न देकर ऊँचे घराने एवं धन सम्पत्ति को ही प्रमुखता देते थे, मानो वे कन्याओं को महलों के साथ विवाह करने को लालायित हों। विरजन की माँ सुशीला ने भी यही किया था। पड़ोस के ही प्रताप के साथ (जिसके साथ विरजन का मन खूब मिला हुआ था) गरीबी के कारण अपनी कन्या का विवाह न कर, डिप्टी साहब श्यामचरण के पुत्र कमलाचरण के साथ किया और मान लिया कि मैदान मार लिया। न देखा लड़के के कारनामों को और न देखी अपनी लड़की की इच्छा–अनिच्छा, पसंदगी–नापसंदगी को।

प्रताप और विरजन दोनों सरल-निष्कपट तथा शान्त प्रकृति के थे। यही नहीं दोनों के मन भी एक-दूसरे से मिल गये थे। वे लगातार एक-दूसरे की ही चिन्ता किया करते थे। दोनों के परिवार में भी कोई कमी नहीं थी। हाँ, प्रतापचन्द्र की आर्थिक स्थिति थोड़ी कमजोर अवश्य थी, लेकिन वह लड़का विरजन के जीवनसाथी बनने के सर्वथा योग्य था। लेकिन कुछ दकियानुसी विचारधारा तथा आर्थिक विषमता के कारण दोनों परिवारों में रिश्तेदारी नहीं हो सकी, उल्टे विरजन का विवाह उस लड़के के साथ कर दिया जाता है, जो किसी भी तरह से विरजन के अनुकूल नहीं था। कमलाचारण जिससे विरजन का विवाह तय किया जाता है, वह एक नम्बर का कबूतरबाजे, जुआरी, कनकौएबाज, शराबी तथा आवारा किस्म का लड़का था। विरजन यदि रूपवति-गुणवती थी तो वह एक नम्बर का बदमाश और नालायक लड़का था। ऐसी सर्वथा भिन्न प्रकृति के लोगों में मेल हो पाना अत्यंत कठिन कार्य था। फिर भी ऊँचे घर के संस्कारों में पली-बड़ी विरजन बड़ी ही धीरज से काम लेती है और अपने पति को सही रास्ते पर लाने तथा उसे सुधारने के यथा

सम्भव प्रयत्न करती है । वह समय-समय पर प्रेम-पूर्ण पत्र लिखती रहती थी ताकि कमलाचरण का मन और विश्वास जीत सके जिससे उसका मन पढ़ाई में बराबर लगा रहे और अन्य जगहों पर न भटके । परंतु मूर्ख कमलाचरण विरजन के इस विशुद्ध प्रेम को समझ नहीं पाया । उसे तो केवल विलास चाहिए था । झूठे ऐंद्रीय सुख के लिए तरसता उसका मन विरजन की निर्मल व सच्ची भावनाओं को समझ नहीं पाता । इसीलिए वह विरजन को मन ही मन यों कोसता रहता है - "मेरे सिर पर यह सब आपत्तियाँ उसी की लादी हुई हैं । उसे मुझसे प्रेम नहीं । मुख और लेखनी का प्रेम भी कोई प्रेम है ? मैं चाहे उस पर प्राण ही क्यों न वारूँ, पर उसका प्रेम वाणी और लेखनी से बाहर न निकलेगा । ऐसी मूर्ति के आगे, जो पसीजना जानती ही नहीं, सिर पटकने से क्या लाभ (वरदान : 1996 : 84) ?" इन विचारों ने यहाँ एक जोर पकड़ा कि उसने विरजन को पत्र लिखना भी त्याग दिया । बेचारी विरजन कलेजा चिर कर रख देती परंतु कमलाचरण पर उसका कोई प्रभाव न पड़ता । विलासी कमलाचरण अपने मन बहलाव के लिए माली की कुँवारी लड़की सरयूदेवी से आँखें लड़ाता है । बेचारी सरयू उसकी झूठी प्रेम जाल में फँस जाती है । कई बार उसके अकेलेपन तथा अँधेरे का फायदा उठाकर कमलाचरण उसके साथ रंगरलियाँ भी मना लेता है ।

सुशीला अपनी एकलौती बेटी को जान से भी ज्यादा चाहती है । वह कमलाचरण की हरकतों को देख-सुनकर भविष्य में बेटी पर जो संकट आनेवाले थे उसे बराबर ताड़ गई थी । अनजाने में ही सही लेकिन बेटी के भविष्य को लेकर उससे जो गलती हो गयी थी, उसे न सुधार पाने की वजह से तथा अगम्य अपराध बोध के कारण वह भयंकर बीमारी की चंगुल में जा गीरती है । जिसका प्रायश्चित वह अपने प्राणों की आहुति देकर करती है । जब तक वह मरणासन्न रही उसे अपनी बेटी की चिन्ता ही सताती रही ।

विरजन के अनमेल विवाह का भयंकर परिणाम तो तब आता है, जब लाख कोशिश करने पर भी कमलाचरण अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आता । अभी तो विवाह का सुख विरजन ने कुछ भोगा भी नहीं था कि कमलाचरण एक माली की लड़की के चक्कर में फँसकर अपनी करतूतों की वजह से जान गँवा देता है । इस घटना से विरजन पर मानो दु:ख का पहाड़ ही टूट पड़ा । कुछ समय पश्चात् एक हादसे में उसके ससूर डिप्टी श्यामचरण की भी मृत्यु हो जाती है । ऐसे दु:खद प्रसंगों पर उसे सबसे ज्यादा सहारे व

सहानुभूति की आवश्यकता थी; परंतु उसके भाग्य में सुख या सहानुभूति कहाँ थी ? ऊपर से उसकी सास प्रेमवती बात-बात पर उस पर ताने कसती, कटूक्तियों से उसके जी को जलाती रहती । उसे तो यही भ्रम हो गया था कि मेरे घर पर जो विपत्तियाँ आई है, वह सब उसीके आगमन के पश्चात् आई है । प्रेमचन्द उसकी मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं -"प्रेमवती यद्यपि बड़ी सुशील और हँसमुख स्त्री थी, तथापि इन दुर्घटनाओं ने उसके स्वभाव और व्यवहार में अकस्मात् बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया । बात-बात पर विरजन से चिढ़ जाती और कटूक्तियों से उसे जलाती । उसे यह भ्रम हो गया था कि ये सब आपत्तियाँ इसी बहू की लायी हुई है । यही अभागिन जब से घर में आयी, घर का सत्यानाश हो गया (वरदान : 1996 : 89)।"

सबसे बड़ा अफसोस तो इस बात का था कि प्रेमवती अच्छे घराने की तथा समझदार औरत थी । वह अपने बेटे की सारी बुराइयों और विरजन की सभी अच्छाइयों को भली-भाँति जानती थी । वह यह भी जानती थी कि बेटा अपने कुकर्मों के फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हुआ था, परन्तु एक साथ बेटे और पति की आकस्मिक मृत्यु ने उसकी मति को हर लिया था । अतः बजाय अपने भाग्य पर रोने के वह सारा दोषारोपण नयी-नवेली दुल्हन बेचारी अभागिन विरजन पर ही डाल देती है । 'प्रेमवती को तो ऐसा ही लगा कि उसका होनहार बेटा कुलक्षणी विरजन के खराब कदमों के घर में पड़ने से ही मरा है । प्रेमवती क्यों, सब सासें उस समय ऐसा ही विचारती थीं, मानती थीं; बचपन में बेटे की शादी करती थीं, और बेटे के मर जाने पर कहती थीं कि हत्यारी बहू बेटे को खा गयी और फिर जल भुनकर जो ताने कसती थीं, उससे बेचारी बाल-विधवा का जीना भी मुश्किल हो जाता था । हिन्दू-समाज में ऐसा अज्ञान, अंध-विश्वास या कुकर्म फैला हुआ था, जिससे कुटुम्ब के कुटुम्ब नरक बन जाते थे ।'

सच पूछा जाय तो 'यह अन्धापन है, अथवा दीवानेपन की हद ! ऐसे दीवानेपन का, और सर्वस्व निछावर करने की तैयारी बताने वाले प्रेम का क्या मेल !! अन्धेपन में कमलाचरण जान खो बैठा और विरजन बालपन में विधवा हो गयी । कई बार माता-पिता की असावधानी या गलती की सजा बेचारे मासूम बच्चों को उम्र भर झेलनी पड़ती है । सुवामा तथा सुशीला की नासमझी के परिणामस्वरूप उधर विरजन वियोगिनी बन गयी, इधर प्रतापचन्द्र सन्यासी ! माता-पिता की भूल का कैसा भयंकर दुष्परिणाम ! परन्तु यह

सब देखते हुए भी हिन्दू-समाज के कानों पर जूँ कहाँ रेंगती थी ? वह तो सो रहा था; उसके होश-हवास ठिकाने ही न थे । यही प्रेमचन्द विशद-रूप से समझा रहे हैं ।'

4.गोदान में चित्रित नारी संवेदना

'गोदान' प्रेमचन्द की अंतिम पूर्ण औपन्यासिक रचना है । जिसमें उन्होंने तत्कालीन भारतीय ग्रामीण जीवन तथा नगरीय परिवेश को सूक्ष्म रूप से उभारने का प्रयास किया है । 'हालाँकि शहरी और ग्रामीण नारी पात्रों के स्वभाव और जीवन के रंग- ढंग अलग–अलग हैं और होने भी चाहिए, पर ऐसा नहीं है कि वे नितांत अलग-अलग दुनिया के पात्र हैं । जीवन की बाह्य परिस्थितियों की प्रेरकता–परवशता के बावजूद नारी मन के स्वाभाव, सोच, सुख-दुःख, रूचि-अरुचि, व्यवहार-भूमि, पारिवारिक कर्म और दायित्वों में जो साँझापन है, 'गोदान' के शहरी और ग्रामीण सभी नारी पात्रों में भी उसकी झलक देखने को मिलती है । ऐसा नहीं है कि उनके निजत्व का अपना कोई स्थान नहीं, निजत्व का अपना स्थान है, तभी तो एक पात्र दूसरे से भिन्न है । यहाँ तक कि वर्गीय पात्रों में भी स्वभाव-वैचित्र्य को नकारा नहीं जा सकता ।'

'गोदान' उपन्यास में प्रेमचन्द ने नारी के अबला रूप के साथ-साथ उसके सबला रूप को भी प्रस्तुत किया है । विविध परिस्थितियों के बदलाव के साथ नारी जीवन में भी बदलाव आने शुरू हो गये थे । जिसके परिणामस्वरूप नारी अब अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए कमर कसती नजर आने लगी थी । हालाँकि उन पर अत्याचार की मात्राएँ कम नहीं हुई थी, फिर भी नारी ने स्वयं लज्जा व शर्म के आवरण को छोड़कर प्रतिकार करना सीख लिया था । गोदान की धनिया एक ऐसी ही नारी है जो किसी भी परिस्थिति से हार नहीं मानती और जहाँ कहीं अन्याय की गुंजाईश भी होती है, वह बुलंद आवाज में उसका प्रतिकार करती है ।

पूरे उपन्यास में धनिया एक स्वाभिमानी नारी के रूप में उभरकर सामने आती है । जहाँ कहीं भी उसके स्वाभिमान को जरा सी भी ठेस लगती है, वह तिलमिला उठती है । अन्याय तो जैसे उससे बिलकुल बर्दाश ही नहीं होता । वह जरा से भी अन्याय की आशंका से किसी के भी विरुद्ध लड़ने को तैयार हो जाती है फिर अन्यायकर्ता चाहे कितना ही समर्थ क्यों न हो । उसका विद्रोह स्पष्टतः तब नज़र आता है, जब हीरा गाय को जहर देकर भाग

खड़ा होता है । वह होरी के मनाने पर भी नहीं मानती और उससे साफ-साफ कह देती है -"सबेरा होते ही लाले को थाने न पहुँचाउँ, तो अपने असल बाप की नहीं । यह हत्यारा भाई कहने के जोग है ! यही भाई का काम है । वह बैरी है, पक्का बैरी और बैरी को मारने में पाप नहीं, छोड़ने में पाप है (गोदान : 1996 : 101)।" जब होरी का उस पर बस नहीं चला तो धनिया को चूप कराने के लिए वह उस पर अपने पति होने का अधिकार जताने लगा और जोर-जोर से सबके सामने उसे लातों से खूब पीटा ।

इस प्रकार पति के हाथों मार खाकर भी सच का साथ नहीं छोड़ती और अन्याय का बराबर विरोध करती है । जब पानी सर के ऊपर चला जाता है तब वह होरी को भी ललकारकर कहती है -"तू हट जा गोबर, देखूँ तो क्या करता है मेरा । दारेगाजी बैठे हैं । इसकी हिम्मत देखूँ । घर में तलासी होने से इसकी इज्जत जाती है । अपनी मेहरिया को सारे गाँव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जाती ! यही तो वीरों का धरम है । बड़ा वीर है, तो किसी मर्द से लड़ । जिसकी बाँह पकड़कर लाया, उसे मारकर बहादुर न कहलाएग । तू समझता होगा, मैं इसे रोटी-कपड़ा देता हूँ । आज से अपना घर सँभाल । देख तो इसी गाँव में तेरी छाती पर मूँग दलकर रहती हूँ कि नहीं, और उससे अच्छा खाँऊ-पहनूँगी । इच्छा हो, देख ले (गोदान : 1996 : 103) ।" धनिया के इन तर्कों ने तो होरी को जैसे परास्त ही कर दिया । क्योंकि वह अच्छे से जानता था कि यदि वह अपने पर उतर आयेगी तो किसी को नहीं छोड़ेगी । ऐसे में होरी के मौन रहने में ही उसकी भलाई थी । समग्र उपन्यास में होरी एक कमजोर व डरपोक व्यक्ति के रूप में उभरता है, जबकि धनिया पतिपरायण नारी होते हुए भी अन्याय को सहना नहीं सीखी थी । उसमें होरी जैसा दब्बूपन नहीं है । उसे न बिरादरी का डर है न पुलिस की धाक-धमकियों का ही उस पर कोई असर होता है ।

धनिया ने होरी के साथ रहकर असंख्य कष्टों सहते हुए संघर्षमय जीवन को व्यतीत किया । जीवन के इन कष्टों व संघर्षों ने एक तो पहले से ही उसकी कमर तोड़ डाली थी ऊपर से असमय ही उसे बुढ़िया भी बना दिया था । उसकी छह संतानों में से केवल तीन ही जीवित बची थी । लेखक उसकी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं -"उसकी भी उम्र अभी क्या थी । छत्तीसवां ही साल तो था; पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़

गई थीं । सारी देह ढेल गई थी, वह सुन्दर गेहूँआ रंग सांवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था (गोदान : 1996 : 105)।"

धनिया के स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता कहे या विचित्रता वह यह थी कि वह एक तो समय-समय पर अपने पति को टोकती रहती थी, उसकी नादानियों व गलतियों को कतई वर्दाश नहीं करती थी । कभी-कभी तो उसे सबके सामने बेइज्जत भी कर देती थी । दोनों के स्वभाव में इतना अंतर होने के बावजूद वह एक सच्ची भारतीय नारी की तरह हर दम सुख–दुख में अपनी पति का बराबर साथ देती है । वह एक पतिपरायण नारी के रूप में भी उभरकर सामने आती है ।

धनिया एक सच्ची गृहिणी, आदर्श पत्नी होने के साथ-साथ एक माँ भी है । उसका मातृवत्सल हृदय एकदम कोमल है । वह केवल जबान की ही तीखी थी किन्तु मन से एकदम निर्मल व कोमल है । अपने बच्चों की लाख गलतियों को नजरअंदाज करके उन्हें सच्चे दिल से अपनाती है । झुनिया के प्रसंग से उसके मातृवत्सल हृदय का स्पष्ट पता चलता है । जब गोबर झुनिया के गर्भवती बनाकर, साथ जीने मरने की झूठी कसमें देकर उसे बीच रास्ते में छोड़कर भाग खड़ा होता है, तब धनिया ही उसे आसरा देती है । उसे अपने पुत्र की गलतियों पर क्रोध भी आता है । पहले तो वह झुनिया को अपने घर रखने से साफ इन्कार कर देती है और होरी को कड़े शब्दों में कह भी देती है -"मैंने तो कह दिया, जैसा किया है, वैसा फल भोग (गोदान : 1996 : 155)। धनिया के इन शब्दों से तो ऐसा लगता है कि वह कभी झुनिया को या गोबर को अपनाएगी ही नहीं किन्तु उसकी ममता बीच में आड़े आ जाती है । जब उसका क्रोध शांत हो जाता है । तब उसे झुनिया पर तरस आ जाता है बेटे की हरकतों पर उसे धिक्कारती भी है किन्तु इसमें वह झुनिया को तो निर्दोष ही समझती है ।

यह उसकी ममता ही थी, जो उसके चरित्र को दृढ़ता प्रदान करती है । यहां तक कि उसे बहुत सी मुसिबतों का सामना भी करना पड़ता है । विरादरी में उसकी नाक कट जाती है, उसे जाति से बाहर कर दिया जाता है, लोग उसे बुरा भला भी कहते हैं किन्तु धनिया टस से मस नहीं होती । धनिया जानती थी, झुनियाँ को आश्रय देने ही से यह सारी विपत्त आयी है । उसे न जाने कैसे दया आ गई, नहीं उसी रात को झुनिया को निकाल देती, तो क्या इतना उपहास होता लेकिन यह भी होता था कि तब उसके लिए नदी या

कुआँ के सिबा और ठिकाना कहाँ था ? एक प्राण के मूल्य देकर एक नहीं दो प्राणों को वह अपनी मरजाद की रक्षा कैसे करती ? फिर झुनिया के गर्भ में जो बालक है, वह धनिया के ही के हृदय का टुकड़ा तो है । हँसी के डर से उसके प्राण कैसे ले लेती । और फिर झुनिया की नम्रता और दीनता भी उसे निरस्त्र करती रहती थी । वह जली–भुनी बाहर से आती; पर ज्यों ही झुनिया लोटे का पानी लाकर रख देती और उसके पांव दबाने लगती, उसका क्रोध पानी हो जाता । बेचारी अपनी लज्जा और दुःख से आप दबी हुई है, उसे और क्या दबाए, मरे को क्या मारे ?

इस प्रकार धनिया के चरित्र में लेखक ने दृढ़ता दिखाई है । वह श्रमशीला होने के साथ-साथ साहसी भी है । समाज के झूठे रीति-रिवाज तथा सेठ-साहुकारों की अन्यायपूर्ण नीति को मूक रूप से सहने के पक्ष में वह बिलकुल नहीं है । वह अनपढ़-गंवार होने के बावजूद समाज की इस खोखली व्यवस्था को बदलना चाहती है । उसके विचारों में क्रान्ति की चिनगारियाँ नजर आती है । अन्याय के विरुद्ध लड़ने में जब कोई भी उसका साथ नहीं देता, तब भी लड़ने के लिए वह सदैव तयार रहती है । परंतु अन्याय व शोषण के इस महासंग्राम में वह अकेली बहुत दूर तक नहीं जा पाती । बीच में कई बार इस खोखली व्यवस्था ने (पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था) तथा समाज की गंभीर परिस्थितियों ने उसके फन को कुचलकर रख दिया । ऊपर से धर्म भीरु होरी के साथ रहते-रहते कई बार न चाहते हुए भी उसे एक समझौता परस्त जीवन व्यतीत करना पड़ता है । जीवन में कभी भी सच्चे सुख का उसने एहसास नहीं किया । अपनी पूरी जिन्दगी उसने संघर्षों का सामना करने, पति तथा बच्चों की सेवा करने और पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करने में ही लूटा दी ।

झुनिया इस पूरे उपन्यास में एक मजबूर व दुःखी औरत के रूप में दिखाई देती है । बचपन में ही उसकी माँ परलोक चली जाती है । माँ का प्यार कभी उसे मिलता ही नहीं और न पति का प्यार उसे ठीक से नसीब हुआ । बचपन में उसकी शादी हो गई थी और कुछ ही समय में वह विधवा भी हो गई थी । उसके मन में भी तरह-तरह के सपने और कामनाएं जाग रही थी । ऊपर से समाज के बड़े लोग उसकी ओर ललचाई नजरों से देखते भी थे । ऐसे में झुनिया की इज्जत पर खतरा और भी गहरा हो जाता था । एक पंडित ने तो उसकी आबरु से खेलने का प्रयास भी किया था, मगर जैसे-तैसे करके वह

अपनी जान बचाकर वहाँ से भाग खड़ी हुई थी । ऐसी झुनिया गोबर की निखालसता और भोलेपन को देखकर उसे अपना सब कुछ अर्पण कर देती है । गोबर भी उसे साथ जीने मरने की कसमें देकर मुसिबत के समय में गर्भवती बनाकर अकेला छोड़कर भाग खड़ा होता है । इतना ही नहीं उसका भाग्य इतना हठी है कि जिस होरी के घर में उसे पनाह मिलती है, उसी की वजह से वह बरबाद भी हो जाता है लेकन फिर भी धनिया उसका साथ नहीं छोड़ती । झुनिया का सगा बाप भी उसे अपना बैरी नजर आता है । अब वह बाप को नहीं किन्तु अपना शत्रु समझती है, क्योंकि जिस घर ने उसे पनाह दी थी, भोला उसी घर की रोजी-रोटी छीनने पर उतारु हो गया था । वह होरी से कहता है -" तुम्हारी कुशल इसी में है कि जैसे झुनिया को घर में रखा था, वैसे ही घर से उसे निकाल दो, फिर न हम बैल मांगेंगे, न गाय का दाम मागेंगे । उसने हमारी नाक कटवाई है, तो मैं भी उसे ठोकरें खाते देखना चाहता हूँ । वह यहां रानी बनी बैठे रहे, और हम मुंह से कालिख लगाए उसके नाम का रोते रहें, यह नहीं देख सकता । वह मेरी बेटी है, मैंने उसे कभी बेटों से कम नहीं समझा, लेकिन आज उसे भीख माँगते और घूर पर दाने चुनते देखकर मेरी छाती शीतल हो जाएगी (गोदान : 1996 : 160) ।" कितना निर्दयी बाप है जो खुद की बेटी के घर को निलाम करने पर तुला है । वह स्वयं तो बूढ़ा है लेकिन अभी भी उसमें जवानी फूट रही है, दूसरी शादी के ख्वाब देख रहे है,किन्तु जवान बेटी के भविष्य की उसे कोई चिन्ता नहीं है ।

झुनिया अपने बाप की कठोरता पर रोती रह गई और धनिया की ममता पर न्योंछावर हो गई । वह ईश्वर से यही प्रार्थना करती है कि हर जन्म में उसे माँ के रूप में धनिया ही प्राप्त हो । अंत में गोबर अपनी गलती सुधारता है, उसे आकर शहर ले आता है, किन्तु शहर में उसके दिन सुख से नहीं कटते । कुछ दिनों तक तो वहाँ आराम से रही फिर आर्थिक कठिनाइयों और शहर के तंग वातावरण में उसका जीना मुश्किल हो गया । ऊपर से गोबर भी आए दिन नशे में चूर होकर उस पर अत्याचार करता है । अब तो गोबर के साथ भी उसकी नहीं बनती । "झुनिया को अब यह शंका होने लगी कि रखेली है, इसी से उसका यह अपमान हो रहा है । ब्याहता होती, तो गोबर की यह मजाल थी कि उसके साथ यह बर्ताव करता । बिरादरी उसे दंड देती, हुक्का-पानी बन्द कर देती । उसने कितनी बड़ी भूल की कि इस कपटी के साथ घर से निकल भागी । सारी दुनिया में हंसी भी हुई

और हाथ कुछ न आया । वह गोबर को अपना दुश्मन समझने लगी (गोदान : 1996 : 165) ।"

'गोदान' में प्रेमचन्द ने सिलिया के माध्यम से उन सभी नारियों की लाचारी एवं विवशता को प्रदर्शित करना चाहा है, जिसके भोलेपन का अमीर या बड़े लोग अपने झूठे मोह या प्रेमजाल में फांसकर उनका फायदा उठाते हैं । गांव के सभी लोग जानते थे दातादीन का पुत्र मातादीन एक नम्बर का पक्का अबारा व लफरेबाज युवक था । जहां देखो, वहां-वहां मुंह मारने की फिराक में रहता था । घर की बहु–बेटियाँ की इज्जत से खिलवाड़ करने में उसे बड़ा मजा आता था । जब और कोई उसके झांसे में न आ सका तो बेचारी भोली–भाली सिलिया को ही झांस लिया । यही मातादीन उसके तलवे चाटता था और उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था "सिलिया, जब तक दम में दम है, तुझे ब्याहता की तरह रखूंगा (गोदान : 1996 : 170) ।" सिलिया नासमझ थी कि पंड़ित की इन झूठी बातों में आकर उसे अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है । अब मातादीन को तो जो चाहिए था, वह सब कुछ मिल गया था । उसे अच्छे से पता था कि अब सिलिया उसे छोड़कर कहीं जाने वाली नहीं थी, जाहे उसे वह मारे या काटे । इस बात का वह खुब फायदा उठाता है । घर व खेती का सारा काम उसी से करवाता ऊपर से कुछ मजूरी भी न देता था, उसका उपभोग करता था, उसकी पत्नी न होते हुए भी उस पर पत्नी सा हक जताता था, उसे मारता-पीटता भी था । अब उसके प्रति न तो कोई सहानुभूति ही थी न दया । बस, एक रखैल की भांति रखता था ।

सिलिया नीची जाति की अवश्य है,फिर भी उसके विचार काफी उच्च थे । वह एक पर दूसरा पति करना नहीं चाहती थी । जिसे तन दिया उसी को मन भी दिया । उसके लिए सब कुछ करने को तैयार है । एक बार मन से उसे अपना पति स्वीकार करने के पश्चात् लाख अपमान सहकर भी उसे छोड़कर जाने को वह सोच भी नहीं सकती और न माँ-बाप के घर लौटकर जाती है । वह अपनी माँ और बाबा को स्पष्ट शब्दों में कह देती है -"मार डालो दादा, सब जने मिलकर मार डालो । हाय अम्मा, तुम इतनी निर्दयी हो; इसीलिए दूध पिलाकर पाला था ? सोर में ही क्यों न गला घोट दिया ? हाय ! मेरे पीछे पंडित को भी तुमने भिरस्ट कर दिया । उसका धरम लेकर तुम्हें क्या मिला ? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा । लेकिन पूछे न पूछे, रहुंगी तो उसी के साथ । वह मुझे चाहे भूखों रखे,

चाहे मार डाले, पर उनका साथ न छोडूंगी । मर जाऊंगी पर हरजाई न बनूंगी । एक बार जिसे न बांह पकड़ ली, उसी की रहूंगी (गोदान : 1996 : 172)।" सिलिया के प्रेम में सम्पूर्ण समर्पण और आत्मविश्वास झलकता है । वह माँ-बाप के घर न जाकर होरी की शरण लेती है, अलग झोंपड़ी बनाती है और मजदूरी करके अपना पेट पालती है ।

गोविन्दी (कामिनी) मि. खन्ना की पत्नी है । वह एक आदर्श पत्नी और शिक्षित नारी के रूप में दिखाई देती है । उसे अपना दाम्पत्य जीवन टूटता–बिखरता नजर आता है । वह इसके लिए मिस मालती को सबसे बड़ी जिम्मेदार मानती है । और उसका मानना कुछ हद तक सही भी लगता है । खन्ना मालती के पीछे पागलों की तरह घूमते-फिरते रहते हैं । वह यह अच्छे से जानते थे कि मालती की नजर में उनकी औकात एक कौड़ी के बराबर ही थी फिर भी लट्टू बने उसके आगे-पिछे घूमा करते थे ।

प्रेमचन्द ने आदर्श गृहिणी के सभी लक्षण गोविन्दी में दिखाए हैं । उसमें त्याग और समर्पण दोनों हैं । स्वयं प्रेमचन्द भी एक भारतीय नारी में उसके जैसा ही त्याग व समर्पण चाहते थे, जो अन्याय के विरुद्ध लड़ते हुए भी अपना आदर्श न छोड़े । अतः उनकी सारी सहानुभूति उसके साथ जुड़ी हुई मालूम होती है । अंत में मि. खन्ना भी अपनी गलतियों पर पछताते नजर आते हैं ।

मालती शहरी या नगरीय परिवेश से जुड़ी हुई नारी पात्रा है, जो उपन्यास की सहनायिका भी है । उसका चरित्र बड़ा ही आकर्षक व रहस्मय है । जिससे पाठकों में एक प्रकार से कौतुहल बना रहता है । वह इंगलैंड से पढ़कर आयी है । वह कम आय में अपना घर चलाती है । प्रारंभ में उसके चरित्र में सिर्फ चंचलता ही नजर आती है । उसके स्वभाव की विशेषता बतलाते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं-"मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी । उसके जीवन में हंसी ही हंसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर जीवन न होगा । वह हंसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं (गोदान : 1996 : 179)।"

मालती आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जिस पर पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव है । उसके अधिकांश मित्र पुरुष वर्गों में से थे । वह जिसे चाहती है, उसके सम्मुख प्यार का इजहार भी स्पष्ट शब्दों में बिना किसी शर्म-संकोच से करती है । उपन्यास के अंत में लेखक ने उसके चरित्र में एक अजीब सा परिवर्तन दिखाया है ।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने गोदान में नारी के सशक्त और दुर्बल दोनों ही पक्षों का चित्रण करने के साथ-साथ नारी के विविध रूपों के भी दर्शन कराए हैं । धीरे-धीरे नारी-जीवन में जो परिवर्तन आता जा रहा था, उसे भी 'गोदान' उपन्यास में देखा जा सकता है । अब धीरे-धीरे समाज में जात-पात के बंधन ढीले होते जाते थे । विधवाओं से विवाह होने लगे थे । कुछ हद तक नारियों ने भी अन्याय के विरुद्ध लड़ना सीख लिया था । विवाह में अब लड़के-लड़की की पसंद-नापसंद भी कुछ हद तक मायने रखने लगी थी । इस प्रकार विचारों का खुलापन शहरों में अधिक था, गांवों में कम । फिर भी इसका मतलब यह बिलकुल नहीं था कि नारी एकदम स्वतंत्र हो गई या उसे सब अधिकार मिलने लगे थे । इसके अलावा प्रेमचन्द ने वेश्याओं की समस्या और उसके उचित समाधान पर भी थोड़ा बहुत प्रकाश डाल दिया है । हालाँकि 'सेवासदन' में इस पर विस्तार से चर्चा की गई है । यदि औरतें आत्म निर्भर हों तथा उनके जीवन निर्वाह की व्यवस्था कर दी जाय तो उन्हें पतित होने से बचाया जा सकता है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में तत् युगीन समाज की नंगी तसवीर उतारने का सफल प्रयास किया है । उन्होंने व्यक्तिगत पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के चित्रण द्वारा मानवीय जीवन में फैली उन बुराइयों और कुरीतियों को दूर करना चाहा है, जिसके रहते हम कभी न तो अपना व्यक्तिगत स्तर ही ऊपर उठा सकते हैं, न सामाजिक स्तर ही विकसित कर सकते हैं । नारी समाज का एक अभिन्न अंग है फिर भी पुरुष की तुलना में हमारी लाख कोशिशों के बावजूद वे ऊपर नहीं उठ सकी है । यदि सच्चे अर्थों में समाज सुधार करना है, लोगों के स्तर को ऊपर उठाना है, तो पहले नारी की स्थिति में सुधार लाना होगा । उसे पुरुष के समान हक तथा मौका मिलना चाहिए और इसके लिए सबसे पहले जरुरी है पितृसतात्मक व्यवस्था में परिवर्तन लाना तथा सामाजिक सड़ी-गली रीतियों व हमारी कुप्रथाओं में सुधार लाना । अन्यथा नारी उत्कर्ष के सभी प्रयास व्यर्थ ही सिद्ध होंगे । इसीलिए तो प्रेमचन्द युग में समाज सुधार के आन्दोलन बड़ी जोर-शोर से चल रहे थे, उनके रहते भी नारी की दशा में कोई परिवर्तन नहीं आया था ।

वैसे तो नारी का शोषण अब भी हो रहा है । शायद पहले से कई गुना ज्यादा; बस उसका तरीका कुछ बदल गया है । प्रेमचन्द अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से एक

नवीन विचारधारा प्रस्तुत करना चाहते थे, जो समाज में एक विशेष क्रांति ला सके । जब तक स्त्री-पुरुष में समानता नहीं आएगी तब तक नारी सुधार के सारे कार्यक्रम व्यर्थ ही रहेंगे । प्रेमचन्द-युग में जो आंदोलन चल रहे थे वे महज कार्यक्रम मात्र बनकर रह जाते थे । उस पर अमलिकरण बहुत कम हो पाया था । प्रेमचन्द ने समाज के इसी दोगलेपन से नकाब उतारने का प्रयास किया है और नारी जीवन की कड़वी सच्चाई को प्रस्तुत करने के लिए उसकी पीड़ा, उसके दुःख-दर्द, उसकी कुण्ठाग्रस्त स्थिति आदि को अपने उपन्यासों में विशेष रूप से स्थान दिया है ।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मित्तल, डॉ. सत्यवती । 2008 । भारतीय जनजागरण और प्रेमचन्द के उपन्यास, हिन्द प्रकाशन, आगरा ।

2. रत्नाकर, डॉ. मोहनलाल । 1979 । प्रेमचन्द–युग का हिन्दी उपन्यास (दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध–प्रबन्ध), ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली ।

3. कुलकर्णी, डॉ. रेखा । 2008 । हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली ।

4. रस्तोगी, डॉ. शैल । 2008 । हिन्दी उपन्यासों में नारी, हिन्द प्रकाशन आगरा ।

5. प्रेमचन्द । 1996 । सेवासदन, हरिश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा ।

6. जोशी, चण्डीप्रसाद । 1998 । हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, न्यू साधना पाकेट बुक्स,दिल्ली ।

7. पटेल, डॉ. सुभद्र नित्यानंद । 1998 । प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना, हिन्द प्रकाशन, आगर ।

8. शर्मा, डॉ. रामविलाश । 1985 । प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

9. पुरी, डॉ. रक्षा । 2006 । प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज, ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली ।

10. प्रेमचन्द 1996 । निर्मला, हरिश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा ।

11. तिवारी, डॉ. रमेश । 2005 । हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, न्यू साधना पॉकेट बुक्स, दिल्ली ।

12. अग्रवाल, डॉ. विन्दु । 1999 । हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

13. प्रेमचन्द । 1996 । वरदान, हरिश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा ।

14. प्रेमचन्द । 1996 । गोदान, हरिश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा ।

पंचम अध्याय

उपसंहार

हिन्दी साहित्य के उपन्यास जगत में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का पदार्पण एक विशेष महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है । उनके उपन्यास में प्रवेश के साथ ही हिन्दी उपन्यास साहित्य की धारा बदल सी गई । इसीलिए प्रेमचन्द का युग हिन्दी उपन्यास साहित्य का उत्कर्ष युग माना जाता है । यद्यपि आधुनिक काल की शुरुआत में प्रेमचन्द से पूर्व, भारतेन्दु युग में ही उपन्यास विधा का उद्‌भव हो चुका था, किन्तु उसे पूर्ण एवं व्यक्तिगत रूप से विकसित करने तथा सामाजिक जन–जीवन के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य यदि किसी ने किया, तो वह प्रेमचन्द ही है । तत्कालीन उपन्यास साहित्य को देखते हैं, तो यह बात अपने आप स्पष्ट हो जाती है कि मानव जीवन को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का श्रेय, 20 वीं शताब्दी के उपन्यासकारों में प्रमुख रूप से प्रेमचन्द को ही प्राप्त हुआ है । अमीर–गरीब, जमींदार-किसान, मालिक-मजदूर, शोषक-शोषित आदि सभी छोटे-बड़े वर्ग को उनके जन-जीवन की समग्रता तथा उनकी विभिन्न समस्याओं के साथ उन्हें चित्रित करना, उनके सुख-दुखों की अभिव्यक्ति करना, सरल–सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण ढंग से पात्रों के अनुकूल संवादों की योजना करना आदि गुण सबसे पहले प्रेमचन्द के साहित्य में ही दिखाई पड़ते हैं ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द के पदार्पण से पूर्व जितना भी साहित्य लिखा गया वह प्रायः घटना प्रधान, उपदेश प्रधान या केवल मनोरंजन प्रधान ही अधिक रहा । उनमें केवल कल्पना तत्व की ही अधिकता थी । ऊपर से उन उपन्यासों में औपन्यासिक कला का विकास भी बहुत कम देखने को मिलता है । इतना ही नहीं तत्कालीन सामाजिक समस्याओं के प्रति भी प्रेमचन्द साहित्य का 'शैशवकाल' या 'प्रायोगिक काल' कहना ही अधिक उचित है । ऐसे में प्रेमचन्द एक युग प्रवर्त्तक के रूप में आए और हिन्दी उपन्यास साहित्य को उसकी चरम ऊँचाई तक पहुंचाया ।

प्रेमचन्द ने पहली बार उपन्यास साहित्य को मानव जीवन के संपूर्ण यथार्थ के साथ जोड़ने का प्रयास किया और कल्पना के स्थान पर समाज की सच्चाई और वास्तविकता को

उपन्यासों में प्रमुख स्थान दिया । प्रेमचन्द ने अपने युग के बहुत से लेखकों का पथ प्रदर्शन भी किया और उपन्यास साहित्य को समाजोन्मूखी बनाया । प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से समग्र देश के दीन–दुःखियों के करुणा जीवन की मार्मिक वेदना को सबके सामने प्रस्तुत किया । उनकी रचनाओं में भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब झलकता है । समाज की पीछड़ी जाति के लोगों को उनके दुःख-दर्दों के साथ प्रस्तुत करके प्रेमचन्द ऐसी जनता के सच्चे प्रतिनिधि बन गए है । स्त्रियों के प्रति तो उन्हें विशेष सहानुभूति थी । अतः अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी की आत्मा को उसकी तमाम अच्छाइयों और बुराइयों के साथ यथार्थवादी ढंग से सबके सामने प्रस्तुत किया है । साथ ही तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था एवं कुरीतियों के चलते नारी जाति की हुई दुर्दशा का चित्रण भी उनके साहित्य में विशेष रूप से मिलता है । दलित एवं नारी जीवन से जुड़ी प्रत्येक समस्याओं को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में बखूबी चित्रित किया है ।

प्रेमचन्द एक ऐसे युगद्रष्टा पुरुष थे जिन्होंने अपने समय में रहकर आने वाले युग को अच्छी तरह से पहचाना था और इसीलिए उनके साहित्य में आने बाले कल की परछायी भी देखने को मिलती है । वर्तमान समय में जो 'नारी विमर्श' और 'दलित विमर्श' अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका है , उनके बीज निश्चित रूप से प्रेमचन्द साहित्य में ढूंढ सकते हैं । इसीलिए तो उनके चले जाने के इतने वर्षों के बाद भी उनकी प्रासंगिकता को लेकर चर्चाएं हो रही है । उनके समस्त साहित्य पर दृष्टिपात करें तो यह बात अपने आप स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द आज भी उतने ही प्रासंगिक है, जितने कि वे अपने समय में थे ।

प्रेमचन्द का युग 'नारी मुक्ति' एवं 'स्वाधीनता' का युग था । इस युग में स्वयं नारी ने अपने उद्धार के लिए अपनी कमर कस ली थी । इस युग में जहाँ एक और नारी उद्धार , नारी स्वतंत्रता आदि की बातें हो रही थी, वहीं दूसरी ओर आचरण व व्यावहारिक स्तर पर नारी अब भी गुलाम की गुलाम ही थी । वह तरह–तरह के अन्याय व शोषण का शिकार बनी हुई थी । इस युग में सुधार की बड़ी-बड़ी बातें करने वाले लोगों की मानसिकता में भी संकीर्णता के दर्शन होते थे । अतः सुधारादि की प्रवृत्ति केवल नाम मात्र की बनकर रह जाती थी ।

प्रेमचन्द युगीन सामाजिक आन्दोलनों में सबसे ज्यादा नारी की दयनीय स्थिति को सुधारने पर अधिक बल दिया गया था, क्योंकि उस समय नारी की स्थिति अत्यंत पीड़ा–जनक थी । उसका स्थान अब तक दोयम दर्जे का ही था । शादी–ब्याह या घर के अन्य किसी भी दूसरी नारी की पीड़ा , उसके दुःख–दर्द को ठीक से समझने में असमर्थ थी । ऐसे में प्रेमचन्द ने उस लाचार, दुःखी व अबला नारी के दुःख–दर्द, उसके जीवन की करुणता से लोगों को अवगत कराया । नारी जीवन के उन विविध पहलुओं को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में विस्तार से चित्रित किया, जिसका प्रेमचन्द पूर्व युगीन उपन्यासों में सर्वथा अभाव था ।

नारी की दयनीय दशा के पीछे यदि कोई कारण जिम्मेदार है, तो वह है भारतीय समाज में व्याप्त 'पितृसत्तात्मक व्यवस्था' । इस समाज की सबसे बड़ी विचित्रता तो यह है कि एक ओर तो वह 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमंते तत्र देवता :' कहकर उसे जगत–जनती, देवी, लक्ष्मी, माता, सरस्वती आदि अनेक रूपों में उसकी वंदना , उसकी उपासना करता है, तो दूसरी तरफ उसी नारी को पीड़ित करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ता । सदियों से नारी के साथ ऐसा दोगला व्यवहार होता आया है । वह सदा के लिए एक उपेक्षिता बनकर ही रह गई । घर–परिवार तथा समाज में उसका स्थान हमेशा दूसरे दर्जे का ही रह गया । समाज में नारी की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं आया । कथित पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था ने उसे दबोचकर रखा था । ऐसे में प्रेमचन्द ऐसी शोषित, निराधार, दुःखी, पीड़ित, लाचार तथा मजबूर नारी जाति के वकील बनकर प्रस्तुत होते हैं ।

प्रेमचन्द नारी के उत्कर्ष के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे । वे नारी को उचित मान-सम्मान व अधिकार दिलाने के पक्ष में थे । नारी के चित्र के ऊपर उठाने के लिए अपने उपन्यासों में उन्हें विशेष रूप से प्रस्तुत किया है । वे नारी को महज काम (वासना) पूर्ति का साधन या बच्चे पैदा करने की मशीन मात्र न समझकर उसे शक्ति स्वरूपा तथा प्रेरणादायिनी के रूप में स्वीकार करते हैं । 'सेवासदन' में नारी जीवन के प्रति अपनी इस चिंता को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं – "ईश्वर वह दिन कब लाएगा कि हमारी जाति में स्त्रियों का आदर होगा । स्त्री मैले-कुचले, फटे-पुराने वस्त्र पहनकर, आभूषण विहीन होकर, आधे पेट सुखी रोटी खाकर, झोंपड़े में रहकर, मेहनत मजदूरी करके सब कष्टों को सहते

हुए भी आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकती है, केवल घर में उसका आदर होना चाहिए, उससे प्रेम होना चाहिए ।"

प्रेमचन्द का नारी विषयक दृष्टिकोण काफी विशाल है । उनका आदर्श काफी ऊँचा है । वे नारी पुरुष की तुलना में कई गुना श्रेष्ठ समझते थे । प्रेमचन्द अपने इन विचारों को 'गोदान' में कुछ यों प्रस्तुत करते हैं, स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शक्ति सम्पन्न है, सहिष्णु है । यहाँ प्रेमचन्द नारी के गुणों की महानता को दर्शाते हैं ।

प्रेमचन्द ने नारी के विविध रूपों को प्रस्तुत करके उनके निजी जीवन को अपने उपन्यासों के माध्यम से पाठकों के सामने खोलकर रख दिया है । तत्कालीन समय में दहेज–समस्या, अनमेल-विवाह की समस्या, आर्थिक स्वतंत्रता की समस्या, वेश्या-समस्या, अवैध प्रेम की समस्या आदि को केन्द्र में रखते हुए एक नारी के जीवन में इसका क्या प्रभाव पड़ा है, इसका विस्तार से चित्रण किया है ।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण का परिचय मिलता है । समाज की नजर में नीच माने जाने वाले कर्म को करने वाली वेश्या नारियों के प्रति भी वे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं तथा एक औरत के वेश्या बनने के पीछे समाज के उत्तरदायित्व को स्वीकार किया है । प्रेमचन्द भारतीय नारी की स्वाधीनता के पक्ष में दिखाई देते हैं । वे नारी को उसकी खोयी हुई अस्मिता को पुनः लौटाना चाहते थे । वे उसे पराधीन नहीं बल्कि अपने बल–बूते पर आगे बढ़ने और रुढ़ियों को तोड़ने की प्रेरणा देते नजर आते हैं ।

प्रेमचन्द के चले जाने के इतने वर्षों के बाद भी नारियों की स्थिति में जो परिवर्तन आना चाहिए था वह नहीं आया । युग बदल गया, युगीन परिस्थितियाँ भी बदल गई लेकिन नारी की दशा अब भी वैसी की वैसी ही है । फर्क सिर्फ इतना पड़ा है कि शोषण करने का तरीका बदल गया है, किन्तु उनका शोषण तो अब भी जारी ही है । आज भी औरतें हर जगह प्रायः अपने अधिकारों से भी वंचित ही रह जाती है । इसका सबसे बडा प्रमाण तो यह है कि वह अपने जन्म लेने के अधिकार से भी वंचित होती जा रही है । वर्तमान समय में जो 'बेटी बचाओ' आन्दोलन इतने जोर–शोर से चल रहा है, वह यही सूचित करता है कि आज उसके जन्म लेने से पहले ही उसे मार दिया जाता है ।

आज भी ऐसे कई परिवार मिल जाएंगे, जिसमें लोग बेटियों की अपेक्षा बेटों को मान, सम्मान व प्रेम अधिक देते हैं । दोनों की परवरिश, रहन-सहन, शिक्षा व्यवस्था, खान-पान आदि सब बातों में भेदभावपूर्ण बर्ताव किया जाता है । शादी-ब्याह के मामले में भी जितनी छुट लड़कों को दी जाती है, उतनी लड़कियों को कभी नहीं दी जाती । शिक्षा के इतने प्रचार–प्रसार के बावजूद दहेज प्रथा ने आज भी कई औरतों के जीवन को नर्क बना दिया है । पढ़े–लिखे वर्ग के लोग भी ज्यादा से ज्यादा दहेज की अपेक्षा रखते हैं । नारी का जीवन इतना कष्टमय हो गया है कि वह अपनी ही देह संबधी बातों के लिए भी स्वतंत्र नहीं है ।

उपर्युक्त बातों पर गौर फरमाया जाए, तो अवश्य पता चलेगा कि वर्तमान समय में भी प्रेमचन्द के विचारों की कमी महसूस होती है । उनकी सी संवेदना आज प्रायः बहुत कम देखने को मिलती है । ऐसे में प्रस्तुत शोधप्रबन्ध द्वारा लोगों में नारियों के प्रति प्रेमचन्द की जो संवेदना थी, वैसी संवेदना जगाने का एक छोटा सा प्रयास मात्र किया गया है ।

***** _____ *****

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

आधार ग्रन्थ

1. प्रेमचन्द । 1996 । सेवासदन, हरिश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा ।

2. प्रेमचन्द । 1996 । निर्मल, हरिश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा ।

3. प्रेमचन्द । 1996 । वरदान, हरिश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा ।

4. प्रेमचन्द । 1996 । गोदान, हरिश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा ।

सहायक–ग्रन्थ–सूची

1. गोपाल, मदन । 1997 । कलम का मजदूर प्रेमचन्द, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

2. पांडेय, दयानन्द (संपादक) । 1998 । प्रेमचन्द : व्यक्तित्व और कृतित्व, किताब महल, इलाहाबाद ।

3. गोयनका, डॉ. कमलकिशोर । 2002 । प्रेमचन्द अध्ययन की नयी दिशाएं, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

4. राय, अमृत । 1997 । प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

5. देवी, शिवरानी । 1956 । प्रेमचन्द : घर में, सरस्वती प्रेस, बनारस ।

6. शर्मा, डॉ. रामविलास । 1985 । प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

7. प्रेमचन्द । 1999 । प्रेमचन्द की 51 अनमोल कहानियाँ, न्यू साधना पॉकेट बुक्स, दिल्ली ।

8. रत्नाकर, डॉ. मोहनलाल । 1979 । प्रेमचन्द–युग का हिन्दी उपन्यास (दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध), ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली ।

9. रस्तोगी , डॉ. शैल । 2008 । हिन्दी उपन्यासों में नारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

10. कुलकर्णी, डॉ. रेखा । 2006 । हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

11. मित्तल, डॉ. सत्यवती । 2008 । भारतीय जनजागरण और प्रेमचन्द के उपन्यास, हिन्द प्रकाशन, आगरा ।

12.जोशी, चण्डीप्रसाद । 1998 । हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, न्यू साधना पाकेट बुक्स,दिल्ली ।

13. पटेल, डॉ. सुभद्र नित्यानंद । 1998 । प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना, हिन्द प्रकाशन, आगर ।

14. पुरी, डॉ. रक्षा । 2006। प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज, ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली ।

15. तिवारी, डॉ. रमेश । 2005 । हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, न्यू साधना पॉकेट बुक्स, दिल्ली ।

16. अग्रवाल, डॉ. विन्दु । 1999 । हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।